मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 41 ● वर्ष 5 ● अंक 3 ● मई 2015 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

माकपा की 21वीं कांग्रेस संशोधनवाद के मलकुण्ड में और भी गहराई से उतरकर मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी की बेशर्म क़वायद 7

हाशिमपुरा से तेलंगाना और चित्तूर तक पूँजीवादी जनवाद के ख़ूनी जबड़ों की दास्तान 9

मोदी सरकार का भूमि अधिग्रहण अध्यादेश और मुआवज़े का अर्थशास्त्र 16

श्रम सुधारों के नाम पर मोदी सरकार का मज़दूरों पर हमला तेज़

विकास के हवा-हवाई सपनों की सौदागरी करते हुए, मुनाफ़ा कूटने की राह की सारी बाधाओं को हटा दिये जाने की बेसब्री से प्रतीक्षा करते पूँजीपतियों को एक और क़ीमती तोहफ़ा देने के लिए मोदी सरकार ने अपने कुख्यात श्रमसुधारों को आगे बढ़ाने का काम शुरू कर दिया है। तीन ऐसे विधेयक तैयार हैं जिन्हें मोदी सरकार जल्द से जल्द क़ानून बनाने के लिए आतुर है।

इनमें से पहला 'बालश्रम (निषेध व नियमन) संशोधन विधेयक' है जिसे श्रम मन्त्री बण्डारू दत्तात्रेय मंजूरी दे चुके हैं। इस विधेयक के अनुसार 14 साल से कम उम्र के बच्चों को किसी संगठित क्षेत्र में तो काम पर रखने की मनाही होगी, लेकिन परिवारों के छोटे प्रतिष्ठानों (घरेलू वर्कशॉपों) में अपने परिवार का "हाथ बँटाने" की उन्हें छूट होगी। ज़ाहिर है कि संगठित क्षेत्र में औपचारिक तौर पर तो बच्चे पहले से ही बहुत कम काम करते थे। सर्वाधिक बालश्रम असंगठित क्षेत्र में ही लगा हुआ था। आज की नयी उत्पादन-प्रक्रिया में असेम्बली लाइन को इस प्रकार खण्ड-खण्ड में अलग-अलग वर्कशॉपों में तोड़ दिया गया है कि मज़दूरों की बड़ी आबादी अनौपचारिक व असंगठित हो गयी है। इस श्रृंखला में सबसे नीचे घरेलू वर्कशॉप आते हैं, जहाँ ज़्यादातर काम ठेके पर लेकर पीसरेट के हिसाब से किया जाता है। श्रम क़ानूनों की यहाँ कोई दख़ल नहीं होती और पूरे परिवार से अधिकतम सम्भव अधिशेष (सरप्लस) निचोड़ा जाता है। अब ऐसे घरेलू वर्कशॉपों या घरों में पीसरेट पर किये जाने वाले कामों में बच्चों की भागीदारी पर से औपचारिक क़ानूनी बन्दिश को भी हटाकर (क्योंकि अब तक

सम्पादक मण्डल

की क़ानूनी बन्दिशों के बाद भी इन कामों में बच्चों की बड़े पैमाने पर भागीदारी होती थी, तभी जाकर परिवार का भरण-पोषण हो पाता था) मोदी सरकार नवउदारवाद के दौर में बच्चों तक की हड्डियाँ निचोड़कर ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कूटने की सम्भावनाओं को निर्बन्ध कर देना चाहती है। मार्क्स ने 'पूँजी खण्ड एक' में इस तथ्य का विशेष उल्लेख किया है और चार्ल्स डिकेंस के उपन्यासों तथा 'इण्डस्ट्रियल नावेल' नाम से ख्यात उपविधा की बहुतेरी कृतियों में इस क्रूर यथार्थ का ग्राफ़िक चित्रण किया गया है कि इंग्लैण्ड में उन्नीसवीं शताब्दी में पूँजीवाद किस तरह स्त्रियों और बच्चों के श्रम के बर्बर अतिशोषण के आधार पर विकसित हुआ था। नवउदारवाद के दौर में, सभी कीन्सियाई नुस्खों के कचरापेटी में फेंक दिये जाने के बाद, विशेषकर एशिया, अफ़्रीका और लातिन अमेरिका के पिछड़े पूँजीवादी देशों में एक बार फिर वैसी स्थिति बनती दीख रही है। भारत में बालश्रम पर रोक और सर्वशिक्षा के सभी वायदे बस जुबानी जमाख़र्च बनकर रह गये हैं। वैसे भी यह एक नंगा सच है कि यदि मज़दूर को परिवार के भरण-पोषण लायक भी मज़दूरी नहीं मिलेगी तो जीने की ख़ातिर बच्चों को भी मेहनत-मजूरी करनी ही पड़ेगी, यदि बालश्रम पर क़ानूनी रोक हो तो भी। यदि मज़दूरों के बच्चे किसी तरह से पढ़ने जाते हैं तो शिक्षा के निजीकरण के इस दौर में सरकारी स्कूलों की पढ़ाई व्यवहारत: उनके किसी काम नहीं आती। पूँजी की राक्षसी शक्ति मेहनतकश के बच्चों से उनका बचपन छीनकर उनकी हड्डियाँ निचोड़ने का काम तो पहले से ही करती रही है। अब इस प्रक्रिया को पूर्णत: निर्बाध बनाने की क़ानूनी प्रक्रिया भी शुरू कर दी गयी है।

मन्त्रिमण्डल की मंजूरी के लिए केन्द्रीय श्रम मन्त्री बण्डारू दत्तात्रेय द्वारा प्रस्तुत दूसरा विधेयक 'दि स्माल फ़ैक्ट्रीज (रेग्यूलेशन ऑफ़ एम्प्लायमेण्ट एण्ड कण्डीशंस ऑफ़ सर्विसेज) बिल' है। इस विधेयक में प्रत्येक कारख़ानेदार को एक 'श्रमिक पहचान संख्या' देने का प्रावधान किया गया है। अब हर कारख़ानेदार ख़ुद ही एक अनुपालन रिपोर्ट दाख़िल करके इसका सत्यापन किया करेगा कि उसके प्रतिष्ठान में सभी 44 श्रम क़ानूनों का अनुपालन किया जा रहा है। इससे भद्दा मज़ाक़ भला और क्या हो सकता है? यानी अभियुक्त स्वयं ही जाँचकर्ता होगा और स्वयं ही

(पेज 12 पर जारी)

भूकम्प से मची तबाही से पूँजीवाद पल्ला नहीं झाड़ सकता

पिछले महीने की 25 तारीख़ को आये प्रलयंकारी भूकम्प ने पूरे नेपाल को अपनी चपेट में ले लिया है। अब तक क़रीब 8,000 लोग अपनी ज़िन्दगी से हाथ धो बैठे हैं, लगभग 18,000 लोग ज़ख्मी और दसियों लाख लोग बेघर हो गये हैं। मरने वालों की संख्या थमने का नाम नहीं ले रही है। अभी भी कई लाशें मलबे के नीचे दबी हुई हैं। भूकम्प की तीव्रता कितनी अधिक थी इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि नेपाल के देहात के 80 फ़ीसदी घर तो मलबे के ढेर में तब्दील हो चुके हैं। कई गाँवों का भूस्खलन की वजह से नामोनिशान मिट चुका है।

नेपाल में तबाही का जो भयानक मंज़र सामने आया है उसमें बचाव कार्य सम्बन्धी तैयारियों के प्रति सरकार की उदासीनता की बहुत बड़ी भूमिका है। दुनियाभर के देशों में से नेपाल 11वाँ ऐसा देश है जहाँ भूकम्प का ख़तरा सबसे अधिक है। लेकिन भूकम्प से बचाव सम्बन्धी तैयारी को लेकर यह दुनियाभर के देशों में से सबसे निचले पायदान पर है। भूकम्प आने से हफ़्ता भर पहले अलग-अलग देशों के 50 वैज्ञानिक नेपाल की राजधानी काठमाण्डू आये थे। भूकम्प के आने का उन्हें पहले से अन्देशा था। सरकार को चेतावनी देना और भूकम्प से बचाव को लेकर की जाने वाली तैयारियों पर चर्चा करना ही उनके आने का मक़सद था। और यह कोई पहली चेतावनी भी नहीं थी। हिमालय पर्वत की तलहटी पर स्थित होने की वजह से नेपाल उन देशों में से एक है जहाँ भूकम्प का ख़तरा सबसे अधिक है। पिछले 205 सालों में नेपाल में आया यह 5वाँ बड़ा भूकम्प है, ख़ुद पृथ्वी बार-बार नेपाल को चेतावनी दे चुकी है। लेकिन इन चेतावनियों से नेपाल के शासकों के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी और तबाही से बचाव को लेकर कोई तैयारी नहीं की गयी।

ग़ौरतलब है कि नेपाल, दुनिया के सबसे ग़रीब देशों में से एक है। 240 साल के लम्बे अर्से तक इसने राजतन्त्र के निरंकुश शासन को झेला है। इस दौरान नेपाल के शासकों ने वहाँ की जनता के शोषण-उत्पीड़न के ज़रिये अपनी महल-मीनारें चमकाने और विलासिता-भरी ज़िन्दगी जीने के अलावा कुछ नहीं किया। ग़रीबी, भुखमरी और ज़िल्लत भरी ज़िन्दगी से परेशान जनता ने माओवादियों के नेतृत्व में 10 साल तक बहादुराना जनयुद्ध लड़ा और 2008 में इस निरंकुश राजतन्त्र को पूरी तरह उखाड़ फेंका। जब तक माओवादियों का जनता से जुड़ाव रहा तब तक जनता में बदलाव की एक उम्मीद थी। लेकिन माओवादियों ने जनता की उम्मीदों पर पानी फेरते हुए क्रान्ति का रास्ता छोड़ अपना ध्यान पूरी तरह सत्ता के गलियारों पर केन्द्रित कर लिया। इसके बाद से जनता में माओवादियों का आधार लगातार कम होता गया। लाल सेना का नेपाली फ़ौज़ में विलय किये जाने के बाद माओवादियों का जनता से रहा-सहा सम्पर्क भी टूट गया। हालत यह है कि आज ज़्यादातर माओवादी नेता जनता से दूर नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में रहते हैं और उनकी विलासिता भरी ज़िन्दगी के चर्चे वहाँ की मीडिया में अकसर होते रहते हैं। और तो और माओवादियों के एक धड़े ने तो पूँजीवादी पार्टी नेपाली कांग्रेस के साथ गलबहियाँ डाल लीं। नेपाली जनता की समस्याओं को भुलाकर

(पेज 13 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

हमारी ताक़त हमारी एकजुटता में ही है!

मेरा नाम विनोद उर्फ़ विक्की है। मैं कस्बा कलायत ज़िला कैथल हरियाणा का रहने वाला हूँ। साथियो मेरी उम्र 30 साल है और 16 साल की उम्र से ही मैंने दिहाड़ी-मज़दूरी का काम शुरू कर दिया था। घर के आर्थिक हालात अच्छे न होने के कारण स्कूल के दिनों में खेत मज़दूरी जैसे कामों में घरवालों का हाथ बँटाना पड़ता था। खेती का काम तो मौसमी होता था और इसमें मेहनत ज़्यादा थी और पैसा कम, इसलिए स्वतन्त्र दिहाड़ी मज़दूर के तौर भी मैंने काफ़ी दिन बेलदारी का काम किया। किन्तु यहाँ भी काम में अनिश्चितता बनी रहती थी। उसके बाद मैंने एक आरा मशीन पर काम पकड़ा, यहाँ मैं लगातार आठ साल तक खटता रहा। मालिक कहा-सुनी व गाली-गलौज करता था, पैसा भी बेहद कम मिलता था। अन्त में एक दिन काम के दौरान आरा मशीन में मेरा हाथ आ गया जिसके कारण मुझे अपनी एक उँगली गँवानी पड़ी। न तो मुझे कोई मुआवज़ा मिला और काम भी मुझे छोड़ना पड़ा। मुझे काफ़ी दिन तक हाथ ठीक होने तक घर पर ही रहना पड़ा। फिर पुन: काम पकड़ने की कोशिशें शुरू हुईं। फिर मैं एक राजमिस्त्री के पास काम सीखने लगा जो भवन निर्माण आदि के ठेके लिया करता था। चार साल तक मैंने उसके नीचे काम किया और ख़ूब बेगारी करनी पड़ी क्योंकि मुझे आधी दिहाड़ी ही मिलती थी और वह भी कभी समय से नहीं। उसके बाद मैंने ख़ुद राजमिस्त्री यानी निर्माण कार्य के कुशल मज़दूर के तौर पर काम करना शुरू किया। मेरे दो बच्चे हैं और बड़ी मुश्किल से ही अपने परिवार का लालन-पालन कर पा रहा हूँ। पिछले साल ही दो मंज़िल पर काम करते हुए पैड़ (शैटरिंग) टूट गयी और मैं नीचे गिर गया। इस दुर्घटना से मेरी कमर पर बुरी तरह चोट लगी और मेरा कन्धा टूट गया। छ: महीने तक मैं काम पर नहीं जा पाया लेकिन अब बड़ी मुश्किल से काम पर जा पा रहा हूँ। पूरी तरह से स्वस्थ न होने के बावजूद भी ग़रीबी के कारण मुझे काम पर जाना पड़ता है। इस दौरान मुझ पर काफ़ी क़र्ज़ भी चढ़ गया लेकिन कोई मुआवज़ा यहाँ भी नहीं मिल पाया। चोट तो किस्मत में थी, मकान मालिक कौन चाहता है कि चोट लगे और "घर की बात" कहकर मामले को यूँहि रफ़ा-दफ़ा कर दिया गया। नौजवान भारत सभा द्वारा संचालित शहीद भगतसिंह पुस्तकालय के माध्यम से मुझे मज़दूर बिगुल अख़बार के बारे में पता चला। यह अख़बार मुझे बहुत अच्छा लगा, क्योंकि यह हम मज़दूरों को अपने हक़-अधिकारों के लिए संगठित होना और लड़ना सिखाता है। इस दौरान मैं नरवाना में काम कर रही निर्माण मज़दूर यूनियन की भी विभिन्न गतिविधियों में शामिल हुआ। कलायत में भी हम ऐसी ही एक जुझारू यूनियन खड़ी करने का प्रयास कर रहे हैं। अगर कलायत में पहले से ही कोई यूनियन होती तो मुझ जैसे अनेक मज़दूरों का हक़ नहीं मरता जो शोषण-उत्पीड़न का शिकार हैं। अपनी एकजुटता के बल पर ही हम मज़दूर अपने हक़-अधिकारों के लिए आवाज़ उठा सकते हैं क्योंकि इस पूँजीवादी समाज में मज़दूर अकेले-अकेले नहीं लड़ सकते। हमारी ताक़त हमारी एकजुटता में ही है और जब तक हम एकजुट नहीं होंगे, हमारा शोषण बन्द नहीं हो सकता। अनेकों लाल झण्डे वाली यूनियनें जो आज ग़द्दार हो चुकी हैं, उनसे भी हमें बचकर रहना होगा क्योंकि ये मज़दूरों को ग़लत रास्ते पर ले जाती हैं। एक तो हमें आज अपनी ऐसी यूनियनें खड़ी करनी होंगी जो हमारी अपनी हों और जिनमें हम भी भागीदारी करें व किसी को अपने संघर्ष का ठेका न दें। और इसके साथ मज़दूर वर्ग को एकजुट होकर अपने ऐतिहासिक मिशन को पूरा करने के काम में जुट जाना होगा, तभी हमारी सच्ची मुक्ति हो सकती है।

– **विक्की**, कुशल भवन निर्माण मज़दूर, कलायत, ज़िला कैथल, हरियाणा

देश के मज़दूरों से अलग नहीं है पानीपत के मज़दूरों के हालात!

मेरा नाम जग्गीलाल है, उम्र 42 साल तथा मूल रूप से मैं उत्तर प्रदेश ज़िला देवरिया का रहने वाला हूँ। पिछले 15 साल से मैं पानीपत में काम कर रहा हूँ। अलग-अलग जगह काम करने के बाद फ़िलहाल मैं तौलिया फ़ैक्टरी में वैल्डर मिस्त्री (फिटर) के तौर पर काम कर रहा हूँ। यहाँ काम करते हुए मुझे 6 साल का समय हो चुका है, किन्तु 12 घण्टे की शिफ़्ट के हिसाब से 6,300 रुपये महावार वेतन मिलता है। फ़ैक्टरी में करीब 1,000 मज़दूर काम करते हैं जिनमें से गिने-चुनें स्थायी मज़दूरों को ही पीएफ़, ईएसआई जैसी सुविधाएँ मिलती हैं। फ़ैक्टरी में काम की कोई तसल्ली नहीं है, मालिक जब चाहे काम से निकाल सकता है। जिस दिन मालिक चाहता है उस दिन काम पर नहीं रखा जाता और उस दिन की तनख़्वाह काट ली जाती है। फ़ैक्टरी रिहाइश से करीब 15 किलोमीटर दूर है, आने-जाने की व्यवस्था ख़ुद ही करनी पड़ती है थोड़ा सा लेट होने पर आधे दिन की तनख़्वाह काट ली जाती है। पिछले दिनों ही अलग-अलग करके करीब सौ मज़दूरों की छुट्टी कर दी गयी थी। बच्चों से भी फ़ैक्टरी में काम करवाया जाता है। जब कभी इंस्पेक्शन होती है प्लाण्ट बन्द दिखाकर बच्चों को हटा दिया जाता है और काम फिर से चालू हो जाता है। यह हाल केवल हमारी फ़ैक्टरी का ही नहीं है बल्कि पानीपत भर के पूरे औद्योगिक इलाक़े के ऐसे ही हालात हैं। कुछ धन्धेबाज़ यूनियनें काम करती हैं लेकिन मज़दूरों की कोई व्यापक एकजुटता नहीं है। मुझे आधी से ज़्यादा उम्र काम करते हो गयी, अभी तक सिर पर अपनी छत नहीं है। किराये के मकान में किसी तरह रहना पड़ता है। मैंने देश के कई हिस्सों में देखा है कि मज़दूर कहीं भी अच्छे हालात में नहीं हैं। और आज तो लगातार बढ़ती महँगाई के समय में बच्चों का पेट भरना भी मुश्किल होता जा रहा है। प्यारे मज़दूर भाइयो, मैं इस अख़बार के माध्यम से यही कहना चाहूँगा कि हिम्मत और हौसला बनाये रखिये व अपनी एकजुटता कायम कीजिये। क्योंकि अपनी एकजुटता के दम पर ही हम लुटेरे मालिकों व उनकी सेवा करने वाली सरकारों को झुका सकते हैं।

– **जग्गीलाल**, वैल्डर मिस्त्री, पानीपत, हरियाणा

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर क्रमश: उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता: (वार्षिक) 70 रुपये (डाकख़र्च सहित);
(आजीवन) 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658,
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल यहाँ से प्राप्त करें :

दिल्ली : मज़दूर पाठशाला, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर (योगेश) 09289498250; वज़ीरपुर (सनी) 09873358124; शहीद भगतसिंह लाइब्रेरी, ए ब्लॉक, शाहबाद डेयरी, फ़ोन - 09971158783
गाज़ियाबाद-नोएडा : (तपीश) 9654077902
गुड़गाँव : (अजय) 09540436262, (राजकुमार) 09919146445
लुधियाना : मज़दूर पुस्तकालय, राजीव गाँधी कालोनी, फ़ोकल प्वाइण्ट थाने के पास, फ़ोन - 09646150249 ● चण्डीगढ़ : (मानव) 09888808188
लखनऊ : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, फ़ोन - 0522-2786782, (सत्यम) 08853093555
गोरखपुर : जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, फ़ोन - 08738863640
इलाहाबाद : (प्रसेन) 08115491369 ● पटना : (विशाल) 09576203525
सिरसा : डॉ. सुखदेव हुन्दल की क्लिनिक, सन्तनगर, फ़ोन - 09813192365
मुम्बई : नारायण, रूम नं. 7, धनलक्ष्मी कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, प्लाट नं. बी-6, सेक्टर 12, खारघर, नवी मुम्बई, फ़ोन - 09619039793

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल : bigul@rediffmail.com
मूल्य : एक प्रति – रु. 5/-
वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित)
आजीवन सदस्यता - 2000/-

हेडगेवार अस्पताल के ठेका सफ़ाई कर्मचारियों के संघर्ष के आगे झुके अस्पताल प्रशासन और दिल्ली सरकार

दिल्ली स्टेट गवर्मेण्ट हॉस्पिटल कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन ने दिल्ली भर के सरकारी अस्पतालों और डिस्पेंसरियों से ठेका प्रथा ख़त्म करवाने के लिए शुरू किया अभियान

पूर्वी दिल्ली स्थित डॉ. हेडगेवार आरोग्य संस्थान में 1 मई से जारी ठेका सफ़ाई कर्मचारियों की हड़ताल सातवें दिन 7 मई गुरुवार को कर्मचारियों की माँगें माने जाने के साथ समाप्त हो गयी। मालूम हो कि दिल्ली सरकार के हेडगेवार अस्पताल के सभी ठेका सफ़ाई कर्मचारियों को 1 मई को बिना किसी नोटिस के काम से निकाल दिया गया था। जबकि केजरीवाल सरकार ने यह अन्तरिम आदेश जारी किया था कि किसी भी ठेकाकर्मी को काम से निकाला नहीं जायेगा। पर अस्पताल और ठेकेदार ने इस आदेश को ताक पर रखकर सभी ठेका कर्मचारियों को काम से निकाल दिया। उसी दिन से ये सभी कर्मचारी 'दिल्ली स्टेट गवर्मेण्ट हॉस्पिटल कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन' (डीएसजीएचकेयू) के बैनर तले नौकरी बहाली व अन्य माँगों को लेकर अस्पताल परिसर में ही धरने पर बैठ गये थे। आख़िरकार दिल्ली सरकार और हेडगेवार अस्पताल प्रशासन को इन ठेका सफ़ाई कर्मचारियों की एकजुटता

दिल्ली के श्रम मंत्री गोपाल राय का घेराव करते अस्पतालों के ठेका मज़दूर

के आगे झुकना पड़ा। 7 मई को नौकरी बहाली का आदेश लेकर दिल्ली सरकार के दो अधिकारी आये और अस्पताल के चिकित्सक अधिकारी से बातचीत के बाद इन कर्मचारियों ने हड़ताल समाप्त करने का फ़ैसला किया।

ज्ञात हो कि इन सफ़ाई कर्मचारियों ने 3 मई को दिल्ली सरकार के श्रम-मन्त्री गोपाल राय का उनके विधानसभा कार्यालय पर घेराव भी किया था। इसके बाद गोपाल राय ने इन कर्मचारियों के प्रतिनिधियों को 4 मई को दिल्ली सचिवालय बुलाया था। हालाँकि गोपाल राय ने डीएसजीएचकेयू की संयोजक शिवानी के दिल्ली सचिवालय में प्रवेश पर रोक लगा दी थी। कर्मचारियों को गोपाल राय ने कोई ठोस आश्वासन नहीं दिया और बैठक बेनतीजा ही रही। इस दौरान अस्पताल में ठेकेदार और एमएस ने इस हड़ताल को तोड़ने की कई कोशिशें कीं जो असफल ही रहीं। फिर 7 मई को दिल्ली सरकार के स्वास्थ्य मन्त्री सतेन्द्र जैन से इन कर्मचारियों की बैठक हुई जिसमें उन्होंने इन लोगों की नौकरी बहाली की माँग को मान लिया। डीएसजीएचकेयू की संयोजक शिवानी ने बताया कि हमारी मुख्य माँग तो यही है कि दिल्ली सरकार दिल्ली में नियमित प्रकृति के कार्य में ठेका प्रथा समाप्त करने के अपने वायदे को पूरा करे। उन्होंने कहा कि मज़दूरों की एकजुटता के चलते हमें आंशिक जीत तो मिली है पर हमारा संघर्ष अभी ख़त्म नहीं हुआ है; हमारी यूनियन ठेका प्रथा समाप्त करने की माँग को लेकर दिल्ली सरकार के अन्य अस्पताल के ठेका कर्मियों को गोलबन्द करेगी। दिल्ली स्टेट गवर्मेण्ट हॉस्पिटल कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन ने इस जीत के बाद अब दिल्ली के सभी सरकारी अस्पतालों और डिस्पेंसरियों में ठेका प्रथा ख़त्म करवाने की माँग को लेकर सभी कर्मचारियों को एकजुट करने के लिए अभियान शुरू कर दिया है। एलएनजेपी अस्पताल, जीबी पन्त अस्पताल, मदन मोहन मालवीय और बाबू जगजीवन राम अस्पताल के कर्मचारी यूनियन में शामिल हैं और अब इस अभियान के ज़रिये दिल्ली के सभी सरकारी अस्पतालों के कर्मचारियों को नियमित प्रकृति के काम से ठेका प्रथा ख़त्म करवाने की इस मुहिम से जोड़ने की कार्रवाई शुरू की जा चुकी है।

– बिगुल संवाददाता

बादल परिवार की कम्पनी की बस में छेड़खानी का विरोध करने पर चलती बस से फेंकी बेटी की मौत, माँ बुरी तरह घायल

ऑर्बिट बस काण्ड और बसों में बढ़ती गुण्डागर्दी के विरोध में पूरे पंजाब में विरोध प्रदर्शन

पंजाब में सत्ता पर काबिज बादल परिवार की ऑर्बिट कम्पनी की एक बस में मोगा में 30 अप्रैल को एक तेरह वर्ष की लड़की अर्शदीप और उसकी माँ को चलती बस से बस स्टाफ़ द्वारा धक्का देकर सड़क पर फेंक दिया गया। लड़की तो मौक़े पर ही दम तोड़ गयी जबकि माँ को गम्भीर चोटें आयीं, लेकिन उसकी जान बच गयी। इस घटना के बाद पंजाब के लोगों का बादल परिवार, पुलिस-प्रशासन, प्राइवेट बस कम्पनियों और सियासी शह पर पलने वाली गुण्डागर्दी के ख़िलाफ़ गुस्सा भड़क उठा है। इस तरह की यह कोई पहली घटना नहीं है। प्राइवेट बसों ख़ासकर बादल परिवार की मालिकी वाली बसों में सवारियों से मारपीट, गाली-गलौज, ज़्यादा किराया वसूलना, स्त्रियों से छेड़छाड़, ग़लत जगह उतारना जैसी चीज़ें साधारण बात है। दूसरे वाहन चालकों, पैदल लोगों, ट्रैफ़िक पुलिस वालों आदि से मारपीट, गाली- गलौज, धक्केशाही, दूसरी बसों के टाइम छीनना तो बादल परिवार की बसों में स्टाफ़ के नाम पर भर्ती किये गये गुण्डे अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। बादल परिवार की बसों में स्टाफ़ के भेस में दो या तीन नहीं बल्कि पाँच-पाँच गुण्डे होते हैं। सभी निजी प्राइवेट कम्पनियों के कर्मचारी ऐसा ही करते हैं लेकिन पंजाब में बादल परिवार की सरकारी-ग़ैरसरकारी गुण्डागर्दी सब पर हावी है जिसके विरुद्ध लम्बे समय से लोगों में आक्रोश सुलग रहा है।

इसीलिए इस घटना के बाद पूरे पंजाब में इस घटना का तीखा विरोध हुआ। 12 मई को ऑर्बिट बस काण्ड विरोधी एक्शन कमेटी, पंजाब के आह्वान पर पूरे पंजाब में डीसी (जिलाधिकारी) कार्यालयों का घेराव किया गया और रोष प्रदर्शन किये गये। लुधियाना में भी डेढ़ दर्जन से

अधिक जनसगठनों ने 'एक्शन कमेटी' के बैनर तले डीसी कार्यालय का घेराव किया। पहले भारत नगर चौक पर रैली की गयी। फ़िरोजपुर रोड पर पैदल मार्च के बाद डीसी कार्यालय का घेराव किया गया। डेढ़ दर्जन से अधिक संगठनों के वक्ताओं ने प्रदर्शन व घेराव के दौरान लोगों को सम्बोधित किया। क्रान्तिकारी सांस्कृतिक मंच, 'दस्तक' के साथियों ने जोशीले-जुझारू गीत पेश किये। प्रशासन ने प्रदर्शन-घेराव से निपटने के लिए पूरी तैयारी कर रखी थी। डीसी कार्यालय पर प्रदर्शनकारियों की भारी संख्या में तैनात की गयी पुलिस के साथ धक्का-मुक्की भी हुई।

ऑर्बिट बस काण्ड विरोधी संघर्ष कमेटी, पंजाब ने माँग की है कि ऑर्बिट बस कम्पनी के मालिकों पर आपराधिक केस दर्ज हो, ऑर्बिट बस कम्पनी के सारे रूट रद्द कर पंजाब रोडवेज को दिये जायें, पंजाब का गृहमन्त्री सुखबीर बादल जो ऑर्बिट कम्पनी के मालिकों में भी शामिल है इस्तीफ़ा दे, इस मसले पर संसद में झूठा बयान देने वाली केन्द्रीय मन्त्री हरसिमरत कौर बादल भी इस्तीफ़ा दे, समूचे बादल परिवार की जायदाद की जाँच सुप्रीम कोर्ट के जज से करवायी जाये। प्राइवेट बस कम्पनियों द्वारा स्टाफ़ के नाम पर गुण्ड भर्ती करने पर रोक लगाने, बसों की सवारियों ख़ासकर स्त्रियों की सुरक्षा की गारण्टी करने के लिए काले शीशे और पर्दों पर पाबन्दी लगाने, अश्लील गीत, अश्लील फ़िल्में, ऊँचे हॉर्न से होने वाले शोर प्रदूषण पर रोक लगाने आदि माँगें भी उठायी गयीं। इसके साथ ही फरीदकोट में ऑर्बिट बस काण्ड के ख़िलाफ़ प्रदर्शन कर रहे नौजवान-छात्रों पर लाठीचार्ज व उन्हें हत्या के प्रयास के झूठे आरोपों में जेल में ठूँसने की सख्त निन्दा करते हुए ये केस रद्द करने व जेल में बन्द नौजवानों-छात्रों को रिहा करने की माँग उठायी गयी।

वक्ताओं ने कहा कि बादल परिवार ने अपने पैसे, राजनीतिक ताक़त और गुण्डागर्दी के ज़रिये भले ही पीड़ित परिवार को डरा-धमकाकर चुप करा दिया हो लेकिन पंजाब के इंसाफ़पसन्द, जुझारू, संघर्षशील मज़दूरों, किसानों, नौजवानों, विद्यार्थियों, मुलाज़िमों के जनसंगठन कतई चुप नहीं बैठने वाले हैं। मसला सिर्फ़ एक परिवार का नहीं है बल्कि पंजाब की समूची साधारण जनता व स्त्रियों की सुरक्षा का है। सिर्फ़ बादल परिवार की बस कम्पनियों में ही गुण्डागर्दी नहीं होती बल्कि सभी निजी बस कम्पनियाँ ऐसी ही हैं।

प्रदर्शन व घेराव को राजविन्दर (टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, पंजाब), कुलविन्दर (नौजवान भारत सभा), दर्शन कोहली (भारतीय किसान यूनियन, उगराहाँ), हरदीप सिंह (भारतीय किसान यूनियन-ढकौंदा), महिन्दर सिंह अच्चरवाल (जमहूरी किसान सभा), प्रो. एके मलेरी (जमहूरी अधिकार सभा), हरजिन्दर सिंह व विजय नारायण (मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्स यूनियन), तरलोचन सिंह (किरती किसान यूनियन), अमरीक सिंह (पंजाब रोडवेज इम्प्लाइज़ यूनियन (आज़ाद), अवतार सिंह रसूलपुर (ग्रामीण मज़दूर यूनियन), गुरदीप कलसी (पंजाब निर्माण मज़दूर यूनियन), रमनजीत सन्धु (डेमोक्रेटिक इम्प्लाइज़ फ़्रण्ट), गल्लर चौहान (लोक एकता संगठन), हरबंस सिंह लोहटबद्धी (देहाती मज़दूर सभा), इक़बाल सिंह (टेक्नीकल सर्विसिज़ यूनियन), कंवलजीत खन्ना (इंक़लाबी केन्द्र पंजाब) आदि वक्ताओं ने सम्बोधित किया। मंच संचालन कारख़ाना मज़दूर यूनियन, पंजाब के अध्यक्ष लखविन्दर ने किया।

वे घबरा चुके हैं

वे घबरा चुके हैं
हमारे सीने में उफनते तूफानों से
वे घबरा चुके हैं
हमारे सृजन सरोकारों से
वे घबरा चुके हैं
हमारी अध्ययन गति
और वैचारिक प्रतिबद्धता से
वे डर गये हैं
शिखरों को छूने के हमारे सपनों से
उन्हें भय है
कि हम नेरूदा, लोर्का, ब्रेष्ट और
पाश के वंशज
उनकी ठहरी हुई
गुलाम मानसिकता
और
पूँजी के लिए घिसटते
उनके सामाजिक
साहित्यिक जीवन को
अपनी कलम की नोक पर टाँगकर
इतिहास के कूड़ेदान में न डाल दें
उनकी आलोचना
कुन्द पड़कर
घटिया लांछनों में बदल गयी है
उनकी जुबान पर झूठे आरोप है
हमारे हाथों में
नाज़िम हिकमत की किताब पर
मुस्कुराती है कोई एक कविता
हम
तूफानों पर सवार हो
रचते हैं
सत्ता के माथे पर
परिवर्तन के गीत
वे
डरे हुए
ईर्ष्या से
खुद के दिलों के बंजरपन पर
झल्लाते
लगाते हैं
हमारे सृजन
और प्रतिबद्धता पर पहरे
क्योंकि
उनका जीवन
दरबार की घुड़साल में
पूँजी पद प्रतिष्ठा का
चारा चर रहा है

– सतीश छिम्पा

अखिलेश यादव के फ़र्ज़ी समाजवाद में मज़दूरों की बुरी हालत

मज़दूर दिवस के अवसर पर उत्तर प्रदेश के तथाकथित समाजवादी मुख्यमन्त्री अखिलेश यादव ने निर्माण मज़दूरों को बधाई देते हुए झूठे वादों से भरे पोस्टरों से पूरा लखनऊ शहर पाट दिया था। लेकिन मुलायमी समाजवाद में मज़दूरों की वास्तविक स्थिति का पर्दाफ़ाश हाल ही में हुए एक सर्वेक्षण ने किया है।

लखनऊ विश्वविद्यालय के कुछ शिक्षकों द्वारा किये सर्वेक्षण के अनुसार लखनऊ में निर्माण क्षेत्र में लगे मज़दूरों का एक तिहाई हिस्सा हर छह माह पर किसी-न-किसी हादसे का शिकार हो जाता है। ज़्यादातर मज़दूर ऊँचाई से गिरने के कारण घायल होते हैं। कई बार तो मज़दूरों की मौत हो जाती है। घायल होने वाले मज़दूरों में 31 प्रतिशत काम के दौरान ज़ख़्मी हैं और 19 प्रतिशत पर निर्माण सामग्री गिरने से, जबकि 9 प्रतिशत भारी या धारदार सामग्री उठाने से घायल होते हैं। 63 फ़ीसदी मज़दूर इलाज के लिए डॉक्टर के पास जा ही नहीं पाते। घरेलू नुस्खों से ही वे अपना इलाज करते हैं जो कई बार प्राणघातक भी हो जाते हैं। इतना ही नहीं पौष्टिक भोजन के अभाव में अधिकतर मज़दूर स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से जूझते रहते हैं। इसी सर्वेक्षण के अनुसार 50 प्रतिशत मज़दूर शरीर में लगातार दर्द से, 42 प्रतिशत साँस की बीमारी से परेशान रहते हैं, 17 प्रतिशत मूत्र सम्बन्धी समस्याओं से ग्रस्त हैं, 27 प्रतिशत को त्वचा का संक्रमण है और 30 प्रतिशत को हर समय सिरदर्द, चक्कर, उल्टी की शिकायत रहती है। दरअसल कार्यस्थल पर सुविधाओं के नाम पर कुछ भी नहीं होता, यहाँ तक कि शौचालय व पीने का पानी भी नहीं। ऐसे में ये परेशानियाँ देरसबेर स्वास्थ्य की गम्भीर समस्याओं में बदल जाती हैं।

लागत घटाने और मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए मज़दूरी, सुरक्षा के उपकरण व कार्यस्थल पर सुविधाओं के लिए पूँजीपति हमेशा ही कम से कम ख़र्च करते हैं। इससे मज़दूरों के स्वास्थ्य पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है, पर इससे पूँजीपतियों को कोई फ़र्क नहीं पड़ता। इस सर्वेक्षण ने एक महत्वपूर्ण खुलासा किया है कि 81 प्रतिशत मज़दूरों को सुरक्षा के कोई उपकरण ही नहीं मुहैया कराये जाते हैं।

मोटे अनुमान के अनुसार लखनऊ में लगभग 6 लाख मज़दूर हैं जिनका बहुतायत निर्माण क्षेत्र में लगा हुआ है। ज़्यादातर मज़दूरों को काम लेबर चौक से ही मिलता है। इनमें से अधिकतर कभी भी पूरे महीने काम नहीं पाते। अधिकतर को महीने में औसतन 15 से 20 दिन ही काम मिल पाता है। यहाँ काम करने वाले मज़दूरों का बहुसंख्यक आप्रवासी है जो पूर्वांचल, लखीमपुर, सीतापुर व आसपास के गाँवों सहित पश्चिम बंगाल, असम, उड़ीसा व बिहार से यहाँ आते हैं। इस अध्ययन में शामिल 87 प्रतिशत मज़दूर 18 से 37 वर्ष के थे जबकि 9 प्रतिशत की उम्र 18 वर्ष से कम थी।

जिस प्रदेश में मज़दूरों की यह स्थिति है, उसी उत्तर प्रदेश की सरकार का रवैया यह है कि पिछले पाँच वर्षों में भवन एवं अन्य सन्निर्माण कामगार कल्याण बोर्ड की मद में जमा 1140 करोड़ रुपये में से सरकार अब तक मात्र 76.59 करोड़ ही ख़र्च कर पायी है। ग़ौरतलब है कि अभी तक सरकार द्वारा ऐसा कोई तन्त्र विकसित नहीं किया जा सका है जिनसे मज़दूरों की सही स्थिति का पता लगाया जा सके। फिर सरकार ने 76 करोड़ कहाँ और किसलिए ख़र्च कर दिये, यह भी स्पष्ट नहीं है। असंगठित मज़दूरों के कल्याण के दिखावे के लिए बीच-बीच में फ़र्ज़ी घोषणाएँ करने वाली प्रदेश सरकार का आलम यह है कि असंगठित मज़दूर सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008 के तहत नियमावली बनाने का काम ही आज तक नहीं किया गया जिससे इस क़ानून से मिलने वाले पंजीकरण तथा अन्य लाभों से मज़दूर वंचित हैं।

यह सर्वेक्षण भले ही लखनऊ में हुआ हो पर आज कमोबेश पूरे भारत में असंगठित मज़दूरों के यही हालात हैं। देश के लगभग साढ़े तीन करोड़ निर्माण मज़दूरों की स्थिति तो और भी ख़राब है। काम के घण्टों, सुरक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी श्रम क़ानूनों का इनके लिए कोई मतलब नहीं। अकसर ठेकेदार या मालिक पैसा देने के बजाय पीट देता है और मज़दूर सिवाय गिड़गिड़ाने के कुछ नहीं कर पाता।

बिगुल के पाठकों को कुछ महीने पहले की एक रिपोर्ट का ध्यान होगा कि लखनऊ के निर्माणाधीन हाइकोर्ट परिसर में चौथी मंज़िल से गिरकर एक मज़दूर की मौत हो गयी थी जिसके बाद सैकड़ों मज़दूरों ने हाईवे जाम कर दोषियों पर कार्रवाई व पीड़ित परिवार को उचित मुआवज़े की माँग की थी। लेकिन बाद में पुलिस ने मामला रफ़ा-दफ़ा कर दिया। पुलिस, क़ानून और इन सरकारों पर विश्वास करके हम पिछले 67 सालों से लगातार धोखे खा रहे हैं। अब हालात यह कह रहे हैं कि इनसे हमें कोई उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। कांग्रेस सहित अन्य सभी चुनावी पार्टियों ने सत्ता में रहते यही किया है पर मोदी के सत्ता में आने के बाद से तो शासक वर्ग ने मज़दूरों के विरुद्ध हमला और भी तेज़ कर दिया है। आज हमारे संगठित होकर लड़ने की ज़रूरत पहले से कहीं अधिक है।

– सत्येन्द्र

अमेरिका के फ़ास्ट फ़ूड कामगारों का संघर्ष

आमतौर पर लोग इस भ्रम के शिकार होते हैं कि विकसित पश्चिमी देशों में ख़ूब ख़ुशहाली है, वहाँ ग़रीबी का नामोनिशान नहीं है और कामगारों के जीवन की परिस्थितियाँ भी काफ़ी बेहतर हैं। लेकिन अमेरिका के हालिया कामगार संघर्षों के बारे में जानना अपने आप में इस भ्रम को तोड़ने के लिए काफ़ी है। गत 15 अप्रैल को अमेरिका में 'फ़ाइट फ़ॉर 15 डॉलर' ('15 डॉलर के लिए संघर्ष करो') आन्दोलन के इर्द-गिर्द एक दिवसीय विरोध प्रदर्शन संगठित किया गया। यह आन्दोलन मुख्यत: मैकडोनाल्ड सहित अन्य फ़ास्ट फ़ूड कामगारों के संघर्ष से शुरू हुआ, हालाँकि 15 अप्रैल को हुए प्रदर्शन में फ़ास्ट फ़ूड कामगारों सहित वाल्मार्ट कम्पनी एवं अन्य रिटेल कम्पनियों के कामगार, एयरपोर्ट कामगार, घरेलू कामगार व बच्चों की देखरेख में लगे कामगार भी बड़ी संख्या में शामिल हुए।

समय में थोड़ा पीछे जाकर देखें तो अमेरिका में 'फ़ाइट फ़ॉर 15 डॉलर' आन्दोलन की नींव वर्ष 2012 में तब पड़ी जब नवम्बर माह में मैकडॉनल्ड, सबवे, बर्गर किंग, केएफ़सी जैसी बड़ी फ़ास्ट फ़ूड कम्पनियों के कामगारों ने अपनी माँगों को लेकर न्यूयॉर्क शहर में विरोध प्रदर्शन एवं हड़तालें संगठित कीं। धीरे-धीरे वह आन्दोलन गति पकड़ता हुआ अमेरिका के 200 अन्य शहरों में फैल गया। नतीजतन बीती 15 अप्रैल को अलग-अलग पेशों के क़रीब 60,000 कामगार 'फ़ाइट फ़ॉर 15 डॉलर' के बैनर तले विरोध प्रदर्शन में शामिल हुए। जानकारों की मानें तो अमेरिका में हाल के वर्षों में कम मज़दूरी के ख़िलाफ़ कामगारों का यह सबसे बड़ा विरोध प्रदर्शन था।

अमेरिका में मैकडोनाल्ड कम्पनी के हेडक्वाटर पर हज़ारों मज़दूरों का प्रदर्शन

जसाक पहल बताया गया ह क 'फ़ाइट फ़ॉर 15 डॉलर' आन्दोलन की शुरुआत मुख्यत: फ़ास्ट फ़ूड कामगारों के संघर्ष से हुई। इस संघर्ष में अधिकतर भागीदारी मैकडोनाल्ड कम्पनी के कामगारों की रही। ग़ौरतलब है कि आज मैकडॉनल्ड फ़ास्ट फ़ूड में लगी श्रमशक्ति का सबसे बड़ा नियोक्ता है। इस आन्दोलन में फ़ास्ट फ़ूड कामगारों की मुख्यत: तीन माँगें थीं। पहली, न्यूनतम मज़दूरी को 7.5 डॉलर प्रतिघण्टा से बढ़ाकर 15 डॉलर प्रतिघण्टा यानी दुगुना कर दिया जाये। इसी माँग के कारण यह आन्दोलन 'फ़ाइट फ़ॉर 15 डॉलर' के नाम से जाना जाने लगा। दूसरी माँग बेहतर कार्य की परिस्थितियों को लेकर थी। मैकडोनाल्ड सहित अन्य फ़ास्ट फ़ूड कम्पनियों में काम के दौरान कामगारों का या ता अपयाप्त इटरवल ामलता है या फिर मिलता ही नहीं है। उन्हें बेहद गरमी में तो काम करना ही पड़ता है, साथ ही साथ उनके कार्यस्थल हवादार न होने की वजह उनकी कार्य परिस्थितियाँ और कठिन हो जाती हैं। कामगारों की तीसरी माँग थी कि उन्हें बिना किसी हस्तक्षेप के यूनियनीकृत होने का अधिकार मिलना चाहिए। यूनियन के अभाव में कोई दबाव न बन पाने की स्थिति में मकडानाल्ड जसा कम्पानया अक्सर ही अपनी ज़िम्मेदारी से आसानी से पल्ला झाड़ लेती हैं। कम्पनी नियोक्ताओं की तानाशाही का आलम तो यह है कि कामगारों को ख़रीदारों से सामान की बिक्री-ख़रीद सम्बन्धी बातचीत के अलावा अन्य किसी भी प्रकार का संवाद स्थापित करने की सख़्त मनाही है।

कामगारों द्वारा यूनियनीकृत होने के अधिकार की माँग को रखना इस मायने में भी महत्वपूर्ण है कि मैकडोनाल्ड में केवल 10 प्रतिशत कामगार ही सीधा कम्पनी मालिकान के तहत काम करते हैं। बाक़ी 90 प्रतिशत तो कम्पनी के फ़्रंचाइजियों में काम करते हैं जहाँ उनके लिए अपनी माँगों को मनवाना बेहद मुश्किल हो जाता है। यही नहीं, अक्सर ही वेतन बढ़ोतरी और सामाजिक सुरक्षा से जुड़े हुए लाभ भी ग़ैर-फ़्रंचाइजी में काम करने वाले कामगारों के एक छोटे से हिस्से तक ही सीमित रह जाते हैं। उदाहरण के लिए, हाल ही में मैकडोनाल्ड ने ग़ैर-फ़्रंचाइजी कामगारों के वेतन में 1 डॉलर की बढ़ोतरी की जबकि उसकी फ़्रंचाइजियों में काम करने वाले 6.5 लाख कामगार इस बढ़ोतरी से पूरी तरह वंचित रह गये।

बहरहाल, 'फ़ाइट फ़ॉर 15 डॉलर' के तहत होने वाले अमेरिकी फ़ास्ट फ़ूड कामगारों के संघर्ष की परिणति चाहे जीत हो या हार, यहाँ महत्वपूर्ण यह नहीं है। यह आन्दोलन इस ओर इशारा कर रहा है कि कामगारों के असन्तोष के सीमित विस्फोटों से पश्चिमी विकसित देश भी अछूते नहीं हैं। ये तमाम विस्फोट पूँजीवाद की संरचना में मौजूद अन्तरविरोधों एवं उनसे उत्पन्न संकटग्रस्तता की ही अभिव्यक्ति हैं।

– श्वेता

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

जम्मू में रहबरे-तालीम शिक्षकों पर बर्बर लाठीचार्ज!

इस 13 अप्रैल को जम्मू में अपने बकाया वेतन जारी करने की माँग को लेकर आरईटी टीचरों नें जम्मू-कश्मीर की ग्रीष्मकालीन राजधानी जम्मू स्थित सचिवालय का घेराव कर रहे रहबरे-तालीम शिक्षकों पर जम्मू-कश्मीर पुलिस ने बर्बर लाठीचार्ज किया। काफ़ी शिक्षक घायल हुए और चार शिक्षकों को पुलिस ने गिरफ़्तार भी किया। इस प्रदर्शन में सर्व-शिक्षा अभियान के तहत लगे शिक्षक, एजुकेशन वॉलंटियर से स्थायी हुए शिक्षक और कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय के अध्यापक शामिल थे। इस श्रेणी के तहत नियुक्त अध्यापकों का एक से तीन वर्षों का वेतन बकाया था जिसके विरोध में यह प्रदर्शन किया गया था। इससे पहले जब शिक्षकों द्वारा सरकार व शिक्षा विभाग को बकाया वेतन जारी करने के लिए कहा गया तो वहाँ से सिवा कोरे आश्वासनों के कुछ नहीं मिला, इसलिए शिक्षकों ने सचिवालय के बाहर प्रदर्शन किया, परन्तु पुलिस ने शान्तिपूर्ण प्रदर्शनकारियों पर जमकर लाठियाँ बरसायीं जिसमें 10 शिक्षक घायल हुए। इस प्रदर्शन का नेतृत्व रहबरे-तालीम फोरम कर रहा था। नेतृत्वकारी घायल शिक्षकों में रंजीत सिंह, किशोर देव, लेख राज व जाकिर भट को पुलिस ने अस्पताल से ही हिरासत में ले लिया।

इससे पहले भी कार्यकाल बढ़ाने की माँग को लेकर शिक्षा मन्त्री के आवास के बाहर शान्तिपूर्ण तरीक़े से भूख हडताल कर रहे अस्थायी शिक्षकों पर भी पुलिस ने बर्बरतापूर्ण तरीक़े से लाठीचार्ज किया था जिसमें दर्जन भर शिक्षकों के चोटें आयीं और अस्थायी शिक्षकों की एसोसिशन के नेताओं को हिरासत में ले लिया। यह लाठीचार्ज सुनियोजित साज़िश का नतीजा था। इसमें पुलिस ने अँधेरा होने के बाद शान्तिपूर्ण अनशन कर रहे अस्थायी शिक्षकों पर लाठियाँ बरसायीं। महिला शिक्षक भूख हड़ताल में भारी संख्या में मौजूद थीं। उन पर पुरुष पुलिसकर्मियों ने लाठियाँ बरसायीं, जोकि वैसे भी नियम विरुद्ध है। नियमत: महिला पुलिसकर्मी ही महिलाओं को गिरफ़्तार कर सकती हैं या लाठी चला सकती हैं। वैसे तो पूँजीवादी सरकारें किसी नियमों को नहीं मानती, परन्तु संविधान व क़ानूनों के दायरे में जो रहे-सहे जनवादी अधिकार हैं, उनका भी सरेआम उल्लंघन होता है। अस्थायी शिक्षकों की यही माँग थी कि शिक्षा मन्त्री खुद मौक़े पर आये और शिक्षकों को कार्यकाल बढ़ाने का आश्वासन दे, परन्तु सरकार का कोई प्रतिनिधि भी शिक्षकों से मिलने तक नहीं आया।

जम्मू-कश्मीर में अभी हाल ही में पीडीपी व भाजपा ने मिलकर सरकार बनायी है। पीडीपी अपने आपको उदारवादी चेहरे के रूप में प्रोजेक्ट करती है। परन्तु उसने सत्ता पाने के लिए फासिस्ट भाजपा से भी हाथ मिला लिया। मुख्यमन्त्री मुफ़्ती मोहम्मद सईद ने जम्मू-कश्मीर से अफ़स्पा हटाने व सेना वापसी की माँग के मुद्दे पर चुनाव लड़ा था। परन्तु अब वह उन मुद्दों पर चुप है। और उसकी पुलिस अपने हक़ों के लिए संघर्ष कर रहे मज़दूरों, शिक्षकों व जनवादी कार्यकर्ताओं पर लाठियाँ बरसा रही है। अब एक बात साफ़ हो जाती है कि चाहे सरकार नेशनल कांफ्रेन्स की हो या पीडीपी की हो बुनियादी मुद्दों पर ये सभी चुनावबाज़ पार्टियाँ एक हैं चाहे वे क्षेत्रीय पार्टियाँ हों या राष्ट्रीय पार्टियाँ। क्षेत्रीय पार्टियाँ क्षेत्रीय आकांक्षाओं को उभारने का काम करती हैं। राष्ट्रीय पार्टियों के बजाय यह क्षेत्रीय मुद्दों को ज़्यादा जुझारू तरीक़े से उठाती है। यह मुख्यत: क्षेत्रीय बुर्जुआ वर्ग व धनी फ़ार्मर किसानों, व्यापारियों का प्रतिनिधित्व करती है। अब यह भी साफ़ हो गया कि जम्मू-कश्मीर में पीडीपी और भाजपा भी मज़दूरों का दमन करने में नेशनल कांफ्रेन्स व कांग्रेस से उन्नीस नहीं बीस ही साबित होगी। अत: किसी चुनावबाज़ पार्टी के भ्रमजाल से निकलकर मेहनतकश आबादी को क्रान्तिकारी संगठन में संगठित होना होगा और आर्थिक और राजनीतिक माँगों के मुद्दों को उठाने के साथ ही दूरगामी लक्ष्य के तौर पर इस दमन और लूट पर टिकी व्यवस्था के खात्मे की लड़ाई लड़नी होगी।

- बिगुल संवाददाता, जम्मू

माछिल फ़र्ज़ी मुठभेड़ – भारतीय शासक वर्ग का चेहरा फिर बेनकाब हुआ!

पिछली 14 मार्च 2015 को सेना द्वारा कोर्ट मार्शल के दौरान माछिल फर्जी मुठभेड़ में दोषी पाये गये दो अफ़सरों और चार सैनिकों को आजीवन कारावास की सज़ा सुनायी गयी। हालाँकि अभी इस फैसले के विरुद्ध अदालत में अपील की जा सकती है जिसके बाद यह मामला वर्षों तक लटका रह सकता है।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि 2014 को 23 जनवरी को भारतीय सेना ने ऐसे ही एक एक और मामले में पथरीबल में पाँच कश्मीरी युवकों की हत्या के दोषी अपने अधिकारियों और सैनिकों को दोषमुक्त करार देकर बरी कर दिया था।

माछिल फर्जी मुठभेड़ एक चर्चित मुठभेड़ थी। वैसे तो जम्मू-कश्मीर में सेना और सीआरपीएफ़ द्वारा फ़र्जी मुठभेड़ के मामले आम बात हैं, परन्तु माछिल फ़र्ज़ी एनकाउंटर का मामला बहुत चर्चित रहा था, क्योंकि इसके बाद पूरे जम्मू-कश्मीर में दो महीने तक सेना के ख़िलाफ़ व्यापक प्रदर्शन हुए जिसमें करीब 126 लोगों के मारे जाने की ख़बर थी। इस पूरे वाकये की शुरुआत अप्रैल 2010 में हुई थी जब भारतीय सेना के जवानों ने तीन कश्मीरी युवकों को नेडीहाल गाँव ज़िला बारामूला से उठाया और कुपवाड़ा ज़िले में नियन्त्रण रेखा के पास गोली मारकर उनकी हत्या कर दी गयी। युवकों के नाम मोहम्मद शफ़ी, शहज़ाद अहमद और रियाज़ अहमद था। इसके बाद हुए व्यापक विरोध प्रदर्शनों के फलस्वरूप सेना को अपने जवानों के ख़िलाफ़ कोर्टमार्शल की कार्रवाई शुरू करने का आदेश देने को मजबूर होना पड़ा। स्थानीय पुलिस ने जाँच के बाद इसे फ़र्ज़ी मुठभेड़ बताते हुए कर्नल पठानिया, मेजर उपिन्दर और सात अन्य सैन्य कर्मियों के ख़िलाफ़ चार्टशीट दाख़िल की थी जिसके बाद सेना ने अदालती जाँच शुरू की जिसमें पाया गया कि छह सैनिकों ने अपनी सीमाओं को लाँघा, इनमें दो अधिकारी भी शामिल हैं। इससे पहले घटना के बाद सेना के अधिकारियों ने नियन्त्रण रेखा पर तीन घुसपैठियों को मार गिराने की बात कही थी, साथ ही उन्हें पाकिस्तानी आतंकवादी भी करार दिया गया था। इसके बाद पूरे कश्मीर में सेना विरोधी प्रदर्शनों का सिलसिला चल पड़ा। जिसमें सीआरपीएफ़ की गोलियों से ही 112 लोग मारे गये।

देखा जाये तो जम्मू-कश्मीर में फ़र्ज़ी मुठभेड़ें आम बात हो चुकी हैं क्योंकि किसी आतंकवादी या घुसपैठिये को मारने से सेना में मेडल और प्रमोशन मिलता है जिसकी चाह में कई सेना के जवान आम कश्मीरी युवकों को भी आतंकवादी बताकर मारने से गुरेज नहीं करते हैं। सेना की ट्रेनिंग ही इस तरह की होती है कि इसमें सैनिकों को बिना सोचे-समझे आदेश मानने वाला एक उपकरण बना दिया जाता है। उनकी संवेदनाओं को ख़त्म कर दिया जाता है। दूसरी बात पूरे जम्मू-कश्मीर में अफ़स्पा 'सशस्त्र बल (विशेष अधिकार) क़ानून' लागू है जिसके तहत सेना और सशस्त्र बलों को किसी को भी सन्देह के आधार पर पूछताछ करने व गिरफ़्तार करने का अधिकार मिला हुआ है। बहुत से मामलों में यह देखा जाता है कि सेना के जवान यह भी जाँच नहीं करते कि जिन लोगों पर गोली चलायी जा रही है, वे आतंकवादी हैं भी या नहीं। कई दफ़ा सेना द्वारा सुनियोजित मुठभेड़ें भी अंजाम दी जाती हैं।

असल में "दुनिया का सबसे बड़ा जनतन्त्र" कहे जाने वाला भारतीय शासक वर्ग जम्मू-कश्मीर और उत्तर पूर्व में 'अफ़स्पा' जैसे काले क़ानून के दम पर वहाँ की जनता से निपटता है। जिसके अन्तर्गत सेना के सशस्त्र बलों को असीमित अधिकार मिल जाते हैं। कश्मीर की जनता की लम्बे समय से अफ़स्पा हटाने की माँग रही है जो कि यहाँ की जनता की जनवादी माँग है जिसे भारतीय शासक वर्ग पूरा नहीं कर रहा है। पीडीपी जैसी जो क्षेत्रीय पार्टी जम्मू-कश्मीर से अफ़स्पा व सेना को हटाने की माँग के बूते चुनाव जीतकर आयी है, उसने भी सत्ता के लिए फ़ासिस्ट भाजपा से हाथ मिला लिया है। पीडीपी का समझौतापरस्त चरित्र बहुत पहले उजागर हो गया था। बस वह अपना जनाधार बचाने के लिए दिखावटी तौर पर कुछ तात्कालिक मुद्दे जैसे सेना के द्वारा मानवाधिकार उल्लंघन व फ़र्ज़ी मुठभेड़े आदि मुद्दे उठाती रहती है। जबकि अब स्वयं पीडीपी के सत्ता में आने के बाद भी मानवाधिकार उल्लंघन व फ़र्जी मुठभेड़ों का सिलसिला थमा नहीं है।

जम्मू-कश्मीर में बहुत से मानवाधिकार संगठनों ने भी फ़र्जी मुठभेड़ों का मामला उठाया था। पीयूसीएल ने भी अपनी रिपोर्ट में कश्मीर घाटी में होने वाली फ़र्जी मुठभेड़ों पर अपनी एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी जिसमें सीधे- सीधे इसके लिए सेना को ज़िम्मेदार ठहराया गया। बहुत सी फ़र्जी मुठभेड़ों का तो पता भी नहीं चलता। वहाँ हज़ारों गुमनाम कब्रें ऐसी फ़र्ज़ी मुठभेड़ों की ख़ामोश गवाही देती हैं। हज़ारों लोग अपने घरों से सेना द्वारा उठाये जाने के बाद लापता हैं। सब जानते हैं कि उन्हें मार दिया गया है मगर उनकी मौत की कोई सरकारी पुष्टि न होने के कारण उन्हें "गुमशुदा" बताया जाता है। उनकी पत्नियों को "अर्द्ध-विधवा" कहा जाता है।

भारत सरकार और उससे भी बढ़कर भाजपा-संघ परिवार के लोग कश्मीर को स्वाभिमान का मसला बताते रहते हैं। मध्यवर्ग के लोगों के लिए वह बस घूमने-फिरने और फिल्मों में नज़ारे देखने की एक जगह है। कश्मीरी जनता के अधिकारों और उन पर लगातार होने वाले दमन की बात उठाने वालों को देशद्रोही करार दिया जाता है। लेकिन जनता के संघर्षों के दबाव में सच के कुछ टुकड़े सामने आ ही जाते हैं।

- बिगुल संवाददाता

(कश्मीर के बारे में विस्तार से जानने के लिए पढ़ें 'मज़दूर बिगुल' दिसम्बर 2010 अंक में प्रकाशित लेख 'कश्मीर समस्या, का चरित्र, इतिहास और समाधान'। वेबसाइट का लिंक: mazdoorbigul.net/archives/6735)

पूँजी की गुलामी से मुक्ति के लिए बॉलीवुड फ़िल्मों की नहीं बल्कि मज़दूर संघर्षों के गौरवशाली इतिहास की जानकारी ज़रूरी है

वैसे तो ज़्यादातर कारख़ानों में साप्ताहिक अवकाश का कोई प्रावधान नहीं है, तथा सातों दिन का काम अब आम बात हो गयी है। परन्तु जब भी हमें ख़ाली वक़्त मिलता है तो हममें से अधिकतर लोग सलमान ख़ान, आमिर ख़ान, शाहरुख ख़ान या बॉलीवुड सितारों की फ़िल्में देखना पसन्द करते हैं। इन तमाम फ़िल्मों को देखने के बाद हम कुछ देर के लिए अपनी कठिन ज़िन्दगी को भूल जाते हैं, परन्तु इससे हमारे वास्तविक जीवन में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है। सुबह होते ही हमें एक बार फिर कोल्हू के बैल की तरह 16-17 घण्टे खटते हुए मालिक की तिजोरियाँ भरने के लिए अपनी-अपनी फ़ैक्टरी के लिए रवाना होना पड़ता है।

ज़्यादातर बॉलीवुड फ़िल्मों में नायक को आम मेहनतकश जनता का हमदर्द तथा अमीरों के दुश्मन के रूप में दिखाया जाता है। परन्तु ये तमाम लोग मेहनतकश जनता के बारे में क्या राय रखते हैं, इसका अन्दाज़ा अभी हाल ही में मुम्बई की एक अदालत द्वारा सलमान ख़ान को सज़ा सुनाये जाने के बाद इनके बयानों से लगाया जा सकता है। इनमें से कुछ ने तो यहाँ तक कह डाला कि फुटपाथ सोने के लिए नहीं होते हैं, इसलिए इस घटना के असली ज़िम्मेदार सलमान ख़ान नहीं बल्कि उस रात वहाँ सो रहे लोग थे। ज्ञात रहे कि अदालत ने सलमान ख़ान को 2003 में फुटपाथ पर सो रहे लोगों पर नशे में धुत हो गाड़ी चढ़ाने के जुर्म में, जिसमें एक व्यक्ति की मौत हो गयी थी तथा चार लोग गम्भीर रूप से घायल हो गये थे, 5 साल की सज़ा सुनायी। हालाँकि सारे क़ानून को ताक पर रखकर उसे दो ही दिन बाद ज़मानत भी मिल गयी।

सज़ा सुनाते ही पूरा का पूरा फ़िल्म उद्योग सलमान ख़ान के बचाव में उतर आया। इस दौरान हर कोई सलमान ख़ान को निर्दोष तथा दिल का साफ़ इंसान साबित करने में जुटा हुआ था। परन्तु इस पूरे तमाशे के दौरान इस हादसे का शिकार हुए लोगों को इंसाफ़ दिलाने के पूरे मुद्दे को ही ठण्डे बस्ते में डाल दिया गया। इससे साबित होता है कि हमारे देश में तमाम क़ानून बस मज़दूरों और ग़रीबों पर ही लागू होते हैं। इसी के चलते जहाँ एकतरफ़ तो सलमान ख़ान जैसे लोग जुर्म करने के बावजूद भी आज़ाद घूमते हैं, वही दूसरी तरफ़ अपनी जायज माँगों को लेकर प्रदर्शन करने वाले मज़दूरों को बिना किसी पुख्ता सबूत के जेलों में ठूँसा जाता है। असली बात तो यह है कि इन तमाम फ़िल्मी सितारों और एक कारख़ाना मालिक के चरित्र में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं है। जिस तरह कारख़ाने में सारी मेहनत तो मज़दूर करता है, परन्तु पूरा मुनाफ़ा मालिक हड़प लेता है। उसी तरह एक फ़िल्म को बनाने में भी सैकड़ों मेहनतकशों की मेहनत लगती है, लेकिन सारा श्रेय और मुनाफ़ा निर्देशक और फ़िल्म के नायक-नायिका आपस में बाँट लेते हैं। इसके अलावा, अपने आलीशान बँगलों, क़ीमती कपड़ों, तथा महँगी गाड़ियों का रौब दिखाते समय ये लोग भूल जाते हैं कि इन तमाम चीज़ों के पीछे मज़दूरों की मेहनत छिपी हुई है। लेकिन साथियों इस पूरी स्थिति के लिए हम भी बहुत हद तक ज़िम्मेदार हैं, क्योंकि वो हम ही हैं जो अपनी मेहनत की कमाई से इनकी घटिया फ़िल्मों की सीडी और टिकट ख़रीदते हैं। असलियत में तो हमारे असली नायक ये नहीं बल्कि अमरीका के शिकागो में शहीद हुए वे मज़दूर नेता हैं, जिन्होंने मज़दूरों के हक़ों के लिए अपनी जान तक की कुर्बानी दे डाली, तथा जिनकी शहादत को याद करते हुए हर साल 1 मई को मई दिवस के नाम से मनाया जाता है। इसलिए साथियों अगर हम चाहते हैं कि हमारे आने वाली पीढ़ी इस दमघोंटू माहौल में जीने के बजाय आज़ाद हवा में साँस ले सके तो हमें अपने गौरवशाली इतिहास को जानना पड़ेगा। इसके लिए ज़रूरी है कि हम अपने ख़ाली समय में इन लोगों की घटिया फ़िल्मे देखने के बजाय ऐसी किताबें तथा साहित्य पढ़ें जो हमें हमारे अधिकारों के बारे में जागरूक बनाती हों।

- मनन विज, शिमला

मोगा ऑर्बिट बस काण्ड : राजनीतिक सरपरस्ती तले पल-बढ़ रही गुण्डागर्दी का नतीजा

पंजाब सरकार पर काबिज बादल परिवार की ऑर्बिट कम्पनी की एक बस में मोगा में 30 अप्रैल को एक तेरह वर्ष की लड़की अर्शदीप और उसकी माँ को चलती बस से बस स्टाफ़ द्वारा धक्का देकर सड़क पर फेंक दिया गया। लड़की तो मौक़े पर ही दम तोड़ गयी जबकि माँ को गम्भीर चोटें आयीं, लेकिन उसकी जान बच गयी। इस घटना के बाद पंजाब के लोगों का बादल परिवार, पुलिस-प्रशासन, प्राइवेट बस कम्पनियों और सियासी शह पर पलने वाली गुण्डागर्दी के ख़िलाफ़ गुस्सा भड़क उठा है। इस तरह की यह कोई पहली घटना नहीं है। प्राइवेट बसों ख़ासकर बादल परिवार की मालिकी वाली बसों में सवारियों से मारपीट, गाली-गलौज, ज़्यादा किराया वसूलना, स्त्रियों से छेड़छाड़, ग़लत जगह उतारना जैसी चीज़ें साधारण बात है। दूसरे वाहन चालकों, पैदल लोगों, ट्रैफ़िक पुलिस वालों आदि से मारपीट, गाली-गलौज, धक्केशाही, दूसरी बसों के टाइम छीनना तो बादल परिवार की बसों में स्टाफ़ के नाम पर भर्ती किये गये गुण्डे अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। बादल परिवार की बसों में स्टाफ़ के भेस में दो या तीन नहीं बल्कि पाँच-पाँच गुण्डे होते हैं। बादल परिवार ने पिछले समय में ख़ासकर पिछले 7-8 साल के सत्ता काल में जो नाजायज सम्पत्ति खड़ी की है, वह बिना गुण्डागर्दी के हो ही नहीं सकता था और इस सम्पत्ति की रक्षा और इसे और फैलाने के लिए भी सरकारी-ग़ैरसरकारी गुण्डागर्दी की ज़रूरत है। सभी पूँजीपति (समेत अन्य निजी प्राइवेट कम्पनियों के) ऐसा करते हैं लेकिन पंजाब में बादल परिवार का सरकारी-ग़ैरसरकारी गुण्डागर्दी का झण्डा सबसे ऊँचा है।

राजनीतिक सरपरस्ती में पलने वाली गुण्डागर्दी पंजाब में बहुत बढ़ चुकी है। इसके ख़िलाफ़ लोगों का गुस्सा फूटना ही था। लोगों का मानना है कि मोगा ऑर्बिट बस काण्ड का वास्तविक दोषी बादल परिवार है, इसलिए उसे सज़ा मिलनी चाहिए। ऑर्बिट बस कम्पन्नी के मालिक बादल परिवार के सदस्यों ख़ासकर पंजाब के उपमुख्यमन्त्री सुखबीर बादल और केन्द्रीय मन्त्री हरसिमरत कौर बादल पर भारतीय दण्ड संहिता व मोटर वेहिकल एक्ट के तहत केस दर्ज करने, ऑर्बिट कम्पनी के सभी रूट रद्द करने और पंजाब रोडवेज को देने, बसों में स्टाफ़ के नाम पर गुण्डे भर्ती करने पर रोक लगाने आदि माँगों पर विभिन्न संगठनों, पार्टियों ने संघर्ष छेड़ा हुआ है। पाँच दिन तक तो पीड़ित परिवार भी इन माँगों पर खड़ा रहा और बेटी का अन्तिम संस्कार नहीं किया। लेकिन इस ग़रीब परिवार को बादल परिवार ने राजनीतिक-आर्थिक दहशत से डरा-धमकाकर और पैसे का लालच देकर चुप करा दिया। भारी पुलिस फ़ोर्स लगाकर रात में अर्शदीप का अन्तिम संस्कार कर दिया गया। बादल परिवार ने सोचा था कि इसके बाद मामला ख़त्म हो जायेगा। लेकिन लड़ाई अभी भी जारी है। चुनावी हितों के लिए इस मसले में धरने-प्रदर्शनों की ड्रामेबाज़ी करने

वाली कांग्रेस, आम आदमी पार्टी जैसी पार्टियाँ तो लगभग चुप्पी साध चुकी हैं लेकिन मज़दूरों, किसानों, नौजवानों, छात्रों, सरकारी कर्मचारियों आदि तबकों के जनसंगठनों ने ऑर्बिट बस काण्ड विरोधी एक्शन कमेटी, पंजाब का गठन करके लड़ाई आगे बढ़ाई है। 12 मई को 'एक्शन कमेटी' के बैनर तले पंजाब में ज़िला स्तर पर डीसी कार्यालयों पर प्रदर्शन और घेराव हुए हैं। संघर्ष को और आगे बढ़ाने की योजनाएँ बन रही हैं। ऑर्बिट बस काण्ड विरोधी संघर्ष कमेटी, पंजाब ने माँग की है कि ऑर्बिट बस कम्पनी के मालिकों पर आपराधिक केस दर्ज हो, ऑर्बिट बस

कम्पनी के सारे रूट रद्द कर पंजाब रोडवेज को दिये जायें, पंजाब का गृहमन्त्री सुखबीर बादल जो ऑर्बिट कम्पनी के मालिकों में भी शामिल है इस्तीफ़ा दे, इस मसले पर संसद में झूठा बयान देने वाली केन्द्रीय मन्त्री हरसिमरत कौर बादल भी इस्तीफ़ा दे, समूचे बादल परिवार की जायदाद की जाँच सुप्रीम कोर्ट के जज से करवाई जाये। प्राइवेट बस कम्पनियों के द्वारा स्टाफ़ के नाम पर गुण्डे भर्ती करने पर रोक लगाने, बसों की सवारियों ख़ासकर स्त्रियों की सुरक्षा की गारण्टी करने के लिए काले शीशे और पर्दों पर पाबन्दी लगाने, अश्लील गीत, फ़िल्में, ऊँचे होर्न से होने वाले शोर प्रदूषण पर रोक लगाने आदि माँगें भी उठाई गयी हैं। 6 मई को फरीदकोट में इन माँगों पर निजी बसों का घेराव कर रहे नौजवानों-विद्यार्थियों पर लाठीचार्ज किया गया था और 14 लोगों पर इरादाकत्ल जैसे झूठे दोषों में जेल में ठूँसा गया है। एक्शन कमेटी ने यह केस रद्द करने व जेल में बन्द नौजवान-छात्रों को रिहा करने की माँग भी उठाई है।

जमहूरी अधिकार सभा की एक रिपोर्ट के मुताबिक़ 10-15 वर्ष पहले सरकारी बस परिवहन (पीआरटीसी व पंजाब रोडवेज़) के पास 70 प्रतिशत सेवाएँ थीं। लेकिन 2011 में निजी बस परिवहन 60 प्रतिशत से अधिक पर काबिज हो चुका था जो 2015 में बढ़कर 70 प्रतिशत हो गया है। आज इसके चलते सरकारी बस परिवहन आर्थिक संकट का शिकार है, जिसके नतीजे के तौर पर कर्मचारी वेतन, पेंशन, आदि के लिए संघर्ष लड़ने पर मजबूर हैं। सरकारी बस परिवहन विभाग की जायदाद बैंकों के पास गिरवी रखी जा चुकी है, स्थाई नौकरियाँ ख़त्म की जा रही हैं और विभाग को ठेकेदारों के चंगुल में फँसा दिया गया है। दूसरी ओर बादल घराने के पास नब्बे के दशक में 4 बसें थीं। 2007 में इसके पास 40 बसों के रूट थे लेकिन अब 230 हो गये हैं। बेनामी बसें इसके अलावा हैं। सुप्रीम कोर्ट ने पिछले कई वर्षों से नये रूट के परमिटों पर पाबन्दी लगाई हुई है। सरकारी बस परिवहन के एक हज़ार रूट बसों की कमी के चलते बन्द हैं। लेकिन बड़े घरानों की बसें बिना परमिटों के सड़कों पर दौड रही हैं। पंजाब में चल रही 492 लग्ज़री (ए.सी., सुपर डीलक्स आदि) बसों में 167 बादल घराने की, 125 अन्य निजी ट्रांसपोटरों की हैं। कुल 17 सुपर इंटेगर्ल बसें जो विभिन्न शहरों को चण्डीगढ़ से जोड़ती हैं सभी ही सरकार पर काबिज घराने की मालकी में हैं। सरकारी नीति को इस तरह तोड़ा-मरोड़ा गया है कि लग्ज़री बसों को 90 प्रतिशत तक छूट और सरकारी बसों को सिर्फ़ 5 प्रतिशत।

राज्य द्वारा निजीकरण की नीतियों के तहत अन्य आर्थिक क्षेत्रों की तरह बस परिवहन पर भी बादल परिवार ने राज्य सत्ता पर क़ब्ज़ा होने का ख़ूब फ़ायदा लिया है। जैसे लग्ज़री ट्रांसपोर्टरों को करों से छूट, मिनी बसों और साधारण बसों पर अधिक टैक्स लगाने, बसों के किराये बढ़ाते रहना, छोटे ट्रांसपोटरों की बाजू मरोड़कर उनके परमिट हासिल करना आदि।

सम्पत्ति को बढ़ाने और इसकी रक्षा के लिए बादल परिवार ने सभी सरकारी-ग़ैरसरकारी हथकण्डे अपनाये हैं। कुछ अन्य छोटे हिस्सेदारों के साथ मिलकर पंजाब के बेरोज़गार नौजवानों को नशों में डुबोकर, रेता बजरी की चोरी, शहरों से हफ़्ता वसूली, भूमि, ट्रांसपोर्ट और अन्य हर तरह के माफ़िये में लम्पट तत्वों को बड़े स्तर पर भर्ती किया गया है।

बादल घराने की बस कम्पनियों ने हॉकरों, ड्राइवरों, कण्डक्टरों, हेल्परों आदि के नाम पर बड़ी संख्या में गुण्डे भर्ती किये हैं जो गुण्डागर्दी करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। इसकी कुछ चर्चा हम ऊपर कर आये हैं। यहाँ कुछ तथ्य देना नावाजिब नहीं होगा। अख़बारी रिपोर्टों के मुताबिक़ मई 2012 से आज तक लगभग 26 केस ऑर्बिट बसों के ख़िलाफ़ दर्ज हुए हैं, काफ़ी सारे पुलिस ने दर्ज ही नहीं किये। सन् 2012 में ऑर्बिट बस के टायरों तले बरनाला में एक बच्चा कुचला गया, संगरूर में फ़रवरी 2013 में एक ऑर्बिट बस ने कार को टक्कर मार दी जिसमें कार ड्राइवर की मौत हो गयी। फ़रवरी 2014 में एक ऑर्बिट बस ने मोटर साइकिल सवारों को कुचल दिया, एक की मौत हो गयी। 30 अप्रैल 2014 को तपा में पेट्रोल पम्प के मालिक को स्कूटर समेत कई मीटर तक खींच ले जाना, 2014 में लुधियाना में एक मोटर साइकिल सवार को कुचलना, फतेहगढ़ साहिब में एक आदमी को अपाहिज बनाना कुछ उदाहरणें भर हैं। 30 मई 2015 को मोगा में हुआ ऑर्बिट बस काण्ड भी बादल घराने द्वारा की जा रही गुण्डागर्दी, नियम-क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाये जाने की कहानी बयान करता है। बस का ड्राइवर पहले भी ख़तरनाक ड्राइविंग के कारण दो व्यक्तियों को कुचल चुका है। उसका लाइसेंस पुलिस ने जब्त किया हुआ है। 30 अप्रैल वाले दिन उसके पास लाइसेंस नहीं था। अपराधी होने के बावजूद कम्पनी ने उसे हटाया नहीं था और उसके पास लाइसेंस न होने के बावजूद भी उससे गाड़ी चलवायी जा रही था। इसके सीधे दोषी कम्पनी मालिक हैं। बस में स्टाफ़ में कई गुण्डे थे जिन्होंने माँ-बेटी को छेड़छाड़ के बाद चलती बस से नीचे फेंक दिया।

जैसे-जैसे देश में उदारीकरण-निजीकरण की तीखी लुटेरी आर्थिक नीतियाँ लागू की जाती रही हैं वैसे-वैसे सरकारी-ग़ैरसरकारी दमन भी बढ़ता गया है। जहाँ पुलिस, फ़ौज, अदालतों के दाँत और नाख़ून तीखे किये जाते रहे हैं, वहीं पूँजीपतियों द्वारा निजी गुण्डा गिरोहों, लम्पट गुण्डा तत्वों को शह देना और इस्तेमाल करना भी बढ़ता गया है। पंजाब में अकाली दल (बादल) और कांग्रेस दो मुख्य चुनावी पार्टियाँ हैं। दोनों ही जमकर गुण्डागर्दी का सहारा लेती हैं। लेकिन अकाली दल (बादल) पिछले 7-8 सालों से सत्ता में होने के चलते इस मामले में आगे है। अकाली दल (बादल) पर बादल घराना काबिज है। बादल परिवार ने पंजाब में जो गुण्डागर्दी का माहौल बनाया है उसके कारण रोज़ाना पता नहीं कितनी ही दुखदाई घटनाएँ घटती हैं। इनमें से कुछ ही सामने आती हैं और इनमें से भी कुछेक ही जनता में चर्चा का विषय बनती हैं। 30 अप्रैल को मोगा में घटित हुआ ऑर्बिट बस काण्ड न सिर्फ़ जनता में चर्चा का विषय बना बल्कि इस पर लोगों का गुस्सा भी फूटा और लोग सड़कों पर आये। मज़दूरों, किसानों, नौजवानों, छात्रों, सरकारी मुलाजिमों के संगठनों ने समय की ज़रूरत को समझते हुए इस घटना के आधार पर बादल परिवार की गुण्डागर्दी समेत समूची गुण्डागर्दी, सार्वजनिक बस परिवहन के निजीकरण के ख़िलाफ़ काबिले-तारीफ़ संघर्ष छेड़ा है। इस संघर्ष को आगे बढ़ाया जाना वक़्त की आवाज़ है।

– लखविन्दर

माकपा की 21वीं कांग्रेस

संशोधनवाद के मलकुण्ड में और भी गहराई से उतरकर मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी की बेशर्म क़वायद

पश्चिम बंगाल तथा केरल के विधानसभा चुनावों एवं पिछले लोकसभा चुनाव में मुँह की खाने के बाद गम्भीर राजनीतिक-सांगठनिक संकट के गुज़र रही संशोधनवादी (यानी मज़दूर वर्ग की ग़द्दार) भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) (संक्षेप में माकपा) ने 14 से 19 अप्रैल के बीच विशाखापट्टनम में अपनी 21वीं कांग्रेस आयोजित की। मार्क्सवादी विज्ञान की रोशनी में नीतियों-रणनीतियों की पड़ताल करने की बजाय अनुभववादी तरीक़े से विश्लेषण करने वाले भोले और भावुक वामपन्थियों एवं प्रगतिशीलों ने इस कांग्रेस से भी उम्मीदें टिका लीं कि इसके बाद माकपा के बीते हुए दिन लौट आयेंगे और एक बार फिर वह भारतीय राजनीति के पटल पर तथाकथित वाम धुरी की नेतृत्वकारी शक्ति बनकर उभरेगी। पार्टी ने अपने आपको "लाल" दिखाने के लिए कांग्रेस के आयोजन स्थल को झण्डों व प्रतीकों के ज़रिये लाल रंग से सराबोर कर दिया था। लेकिन कांग्रेस के दौरान पारित प्रस्तावों-रिपोर्टों एवं नये नेतृत्व को विचारधारा की कसौटी पर परखने पर हम पाते हैं कि आयोजन स्थल पर लाल रंग के प्रतीक तो बस छलावा थे, असल में इस कांग्रेस के बाद तो माकपा संशोधनवाद के मलकुण्ड में पहले से भी अधिक गहराई में उतरती दिख रही है और मज़दूर वर्ग से अपनी ग़द्दारी का ज़्यादा से ज़्यादा नंगे तौर पर मुज़ाहिरा कर रही है।

कांग्रेस के दौरान पारित राजनीतिक-रणकौशलात्मक (पॉलिटिकल-टैक्टिकल) लाइन पर समीक्षा रिपोर्ट पर एक नज़र दौड़ाने भर से यह स्पष्ट हो जाता है कि आने वाले दिनों में माकपा मज़दूर वर्ग से ऐतिहासिक विश्वासघात के पुराने कीर्तिमानों को ध्वस्त करने की पूरी तैयारी कर चुकी है। यह रिपोर्ट पिछले ढाई दशकों के दौरान पार्टी की राजनीतिक-रणकौशलात्मक लाइन की आलोचनात्मक पड़ताल करने का दावा करती है ताकि आगे के लिए कारगर राजनीतिक-रणकौशलात्मक लाइन तैयार की जा सके। लेकिन इसमें समीक्षा के नाम पर खानापूर्ति ही दिखती है और संसद के सुअरबाड़े में अपने खोये हुए कोने को हासिल करके उसमें लोट लगाने की व्यग्रता छिपाये नहीं छिपती। इस रिपोर्ट के बिन्दु 5 में बताया गया है कि राजनीतिक-रणकौशलात्मक लाइन वह रणकौशल (टैक्टिक्स) होता है जिसे हम जनता की जनवादी क्रान्ति के अपने रणनीतिक लक्ष्य तक पहुँचने के लिए किसी परिस्थिति विशेष में अपनाते हैं। इसी बिन्दु में हमें बताया गया है कि इस लाइन के ज़रिये पार्टी बुर्जुआ-भूस्वामी पार्टियों के बरक्स एक वाम और जनवादी विकल्प प्रस्तुत कर अपने रणनीतिक लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहती है। वैसे तो जिस समाज में उत्पादन सम्बन्धों में कई दशकों पहले ही पूँजीवादी रूपान्तरण हो गया हो वहाँ जनता की जनवादी क्रान्ति का रणनीतिक लक्ष्य भी तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, लेकिन उत्पादन प्रणाली की बहस में न भी उतरें तो भी समीक्षा रिपोर्ट में जो बात कही गयी है वह सच्चाई से मेल नहीं खाती। सच तो यह है कि अपने जन्मकाल से ही माकपा ने बुर्जुआ चुनाव में हिस्सा लेने को रणकौशल के रूप में नहीं बल्कि अपनी मुख्य रणनीति के रूप में इस्तेमाल किया है जो किसी भी संशोधनवादी पार्टी की ख़ासियत होती है। समीक्षा रिपोर्ट में रणकौशल के रूप में जो बातें कही गयी हैं, वे दरअसल माकपा की रणनीति का हिस्सा हैं। अब माकपा सीधे-सीधे यह बात कह नहीं सकती क्योंकि तब उसको कम्युनिस्ट पार्टी का अपना चोला उतार फेंकना होगा। इसलिए हर घाघ संशोधनवादी पार्टी की तरह माकपा बड़ी ही निर्लज्जता के साथ अपनी रणनीति को रणकौशल के रूप में प्रस्तुत करती है।

समीक्षा रिपोर्ट के बिन्दु 6 में पार्टी अपनी पीठ थपथपाते हुए बताती है कि किस तरह से 13वीं कांग्रेस और उसके बाद की कांग्रेसों में पारित राजनीतिक-रणकौशलात्मक लाइन ने पार्टी को राजीव गाँधी की सरकार और उसके बाद नरसिम्हाराव की सरकार को पराजित करने में मदद की। यही नहीं उसकी मदद से ही पार्टी 1996 में भाजपा को सत्ता में आने से रोकने के लिए ग़ैर-कांग्रेसी शक्तियों को लामबन्द करने में सफल रही। 2004 में भाजपा नीत एनडीए गठबन्धन को पराजित करने में इस लाइन ने दिशा दी। इसके अलावा कई क़ानूनों को पास करवाने में भी इसकी भूमिका रही। रिपोर्ट में पार्टी ने बुर्जुआ पार्टियों के सत्ता में आने और जाने की सामान्य बात को कुछ इस प्रकार बयान किया है मानो इस चुनावी गटरगंगा में नागनाथ को हटाकर सांपनाथ को लाने से सर्वहारा वर्ग की ज़िन्दगी बेहतर हो गयी हो। सर्वहारा वर्ग के इन ग़द्दारों से पूछा जाना चाहिए कि राजीव गाँधी की सरकार को हटाकर वीपी सिंह और चन्द्रशेखर की सरकार, नरसिम्हाराव की सरकार को हटाकर देवगौड़ा और गुजराल की सरकार और एनडीए की सरकार हटाकर यूपीए की सरकार बनवाने में भूमिका अदा करके इन्होंने सर्वहारा वर्ग का क्या भला किया? ग़ौरतलब है कि पिछले ढाई दशकों में जितनी भी सरकारें आयीं सबने नवउदारवादी नीतियों को आगे ही बढ़ाया जिसकी वजह से इस देश के मज़दूरों की ज़िन्दगी बद से बदतर हुई है। रिपोर्ट में नवउदारवादी हमले पर ख़ूब आँसू बहाये हैं, लेकिन नवउदारवाद की इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में इस संशोधनवादी पार्टी की तिकड़मों, बुर्जुआ पार्टियों के साथ इनकी गलबहियों और पश्चिम बंगाल एवं केरल में इनकी करतूतों की क्या भूमिका रही इसको लेकर कहीं भी आत्मालोचना नहीं की गयी है। ख़ैर जिस पार्टी को संशोधनवाद के रास्ते पर ही तेज़ी से आगे बढ़ते जाना ही अपनी रणनीति बना ली हो उससे यह उम्मीद करना भी बेमानी होगा कि वह अपनी आत्मालोचना रखेगी।

रिपोर्ट के बिन्दु 7 में पार्टी ने इस बात को लेकर अपने मुँहमियाँ मिट्ठू बनने की हास्यास्पद कोशिश की है कि 1991 से लेकर अब तक नवउदारवादी नीतियों के ख़िलाफ़ एकजुट प्रतिरोध खड़ा करने के मक़सद से अखिल भारतीय स्तर की 15 आम हड़तालें हो चुकी हैं। हर कोई जानता है कि जिस तरीक़े से हर तीन साल में ये पार्टी अपनी कांग्रेस करने की रस्मी क़वायद करती है उसी तरीक़े से हर दूसरे साल दिखावे के लिए एक देशव्यापी हड़ताल आयोजित करने की रस्मअदायगी भी करती है जिसमें देश के अलग-अलग हिस्सों में पार्टी के कार्यकर्ता दुकानों और अन्य प्रतिष्ठानों को ज़बरन बन्द करवाते हैं, जन्तर-मन्तर पर पार्टी के बड़े नेता कुछ गरमागरम भाषण देते हैं और मीडिया में दिखाने के गिरफ़्तारी की नौटंकी करते हैं, पुलिस की बस में बैठकर फोटो सेशन करवाते हैं और थोड़ी देर बसयात्रा कराने के बाद मीडिया का कैमरा हटते ही पुलिस उन्हें रिहा कर देती है। यह नौटंकी इतनी बार हो चुकी है कि राजनीतिक रूप से सजग कोई भी व्यक्ति जानता है कि इसमें क्या-क्या होने वाला है। इसी नौटंकी को मज़दूर वर्ग के ये ग़द्दार देशव्यापी आम हड़ताल का नाम देते हैं और बेशर्मी से अपनी समीक्षा रिपोर्ट में इसको उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

उसके बाद के कई बिन्दुओं में समीक्षा रिपोर्ट वामपन्थी और जनवादी मोर्चे की अवधारणा के बारे में हमारा ज्ञानवर्धन करती है। बिन्दु 14 में रिपोर्ट यह स्वीकार करती है कि इस अवधारणा को प्रस्तुत किये जाने के साढ़े तीन दशक बीतने के बाद भी अखिल भारतीय स्तर पर कोई वामपन्थी और जनवादी मोर्चा नहीं बन पाया है। इस नंगी सच्चाई को तो हर कोई जानता है कि यह मोर्चा नहीं बन पाया है। किसी अवधारणा को प्रस्तुत किये जाने के साढ़े तीन दशक बाद आयी समीक्षा रिपोर्ट से तो लोग यह अपेक्षा करते हैं कि वह इस बात पर रोशनी डाले कि यह अवधारणा कहाँ तक वास्तविकता से मेल खाती है और इसके लागू न होने पाने के क्या कारण रहे।

आगे के बिन्दुओं में रिपोर्ट इस विफलता के कारण बताते हुए कहती है कि तात्कालिक परिस्थितियों की वजह से पार्टी ने वामपन्थी और लोकतान्त्रिक मोर्चे के अपने रणकौशलात्मक लक्ष्य को

(पेज 8 पर जारी)

क्या सीताराम माकपा को मझधार से बाहर निकाल पायेंगे?

माकपा की 21वीं कांग्रेस के दौरान पार्टी में नेतृत्व-परिवर्तन ने मीडिया की सुर्खियाँ बटोरीं। महासचिव चुने जाने के बाद सीताराम येचुरी ने एक अंग्रेज़ी टीवी चैनल के कार्यक्रम में यह बताने के लिए कि उन्हें धर्म से कोई परहेज़ नहीं है, गर्व से कहा कि मेरा तो नाम ही सीताराम है! माकपा के समर्थक और भलेमानस भोले वामपन्थी यह उम्मीद लगाये बैठे हैं कि सीताराम पार्टी को मझधार से बाहर निकालेंगे और उसका बेड़ा पार करेंगे। लेकिन इन महानुभाव के पुराने ट्रैकरिकॉर्ड पर एक नज़र दौड़ाने से तो यह बात उभरकर आती है कि इस मझधार से निकालना तो दूर उसे इस मझधार तक लाने में उनकी कम भूमिका नहीं रही है। बुर्जुआ मीडिया सीताराम येचुरी का बखान करते हुए बताता है कि वे बहुत 'प्रैग्मैटिस्ट' (दुनियादार) और 'फ़्लेक्सिबल' (लचीले) क़िस्म के नेता हैं। उनके बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे इतने मिलनसार हैं कि उनके मित्र हर पार्टी में मौजूद हैं। ऐसे दुनियादार, लचीले और मिलनसार व्यक्ति से तो बस यही उम्मीद की जा सकती है कि उसके नेतृत्व में उन भोले वामपन्थियों के भ्रम भी टूट जायेंगे जो माकपा को अभी तक संशोधनवादी नहीं मानते। माकपा के भीतर येचुरी का आधार पश्चिम बंगाल प्रदेश इकाई में सर्वाधिक है जिसके मार्गदर्शन में ही नन्दीग्राम और सिंगूर की घटनाएँ अंजाम दी गयी थीं। ग़ौरतलब है कि पार्टी की राजनीतिक-रणकौशलात्मक लाइन की जो समीक्षा रिपोर्ट 21वीं कांग्रेस में पारित की गयी उसकी तैयारी के दौरान अक्टूबर 2014 में बुलायी गयी पार्टी के पोलित ब्यूरो की एक बैठक में येचुरी ने एक असहमति नोट रखा था जिसमें उनका मानना था कि ऐसी किसी समीक्षा की ज़रूरत ही नहीं है क्योंकि गड़बड़ी पार्टी की राजनीतिक-रणकौशलात्मक लाइन में नहीं बल्कि नेतृत्व द्वारा उसको लागू करने के तरीक़े में रही है। यानी कि समीक्षा रिपोर्ट में पार्टी द्वारा दबी जबान में जो नाममात्र आत्मालोचना की गयी है उससे भी येचुरी इत्तेफ़ाक नहीं रखते। ग़ौरतलब है कि येचुरी माकपा के सापेक्षत: नरम संशोधनवादी खेमे से आते हैं जो नवउदारवादी नीतियों के प्रति अधिक उदार हैं और जिसको हिन्दुत्ववादी भाजपा को सत्ता में आने से रोकने के नाम पर कांग्रेस से भी गलबहियाँ करने से भी कोई परहेज़ नहीं है। ग़ौरतलब है कि 2004 में यूपीए सरकार बनवाने में इन महानुभाव की बड़ी भूमिका थी। नवउदारवाद के एक्शनमैन चिदम्बरम के साथ मिलकर इन्हीं जनाब ने तथाकथित न्यूनतम साझा कार्यक्रम तैयार किया था। याद करने की बात यह भी है कि 1996 में माकपा के भीतर प्रकाश करात की सापेक्षत: गरम संशोधनवादी लाइन के दबाव में जब ज्योति बसु प्रधानमन्त्री नहीं बन पाये थे तो करात के विरोध करने वालों में हरकिशन सिंह सुरजीत और ज्योति बसु के साथ येचुरी भी शामिल थे। वे सुरजीत के योग्य शिष्य माने जाते हैं जो चुनावी राजनीति की तिकड़मों और सरकारें बनाने-गिराने में इतने माहिर थे कि बुर्जुआ मीडिया भी उन्हें भारतीय राजनीति के चाणक्य कहकर तारीफ़ करते नहीं अघाता था। वैसे देखा जाये तो संशोधनवादियों के बीच शुरू से ही सापेक्षत: नरम संशोधनवाद और सापेक्षत: गरम संशोधनवाद की नुमाइन्दगी करने वाले दो खेमे मौजूद रहे हैं। साठ के दशक में अविभाजित भाकपा के भीतर डांगे-राजेश्वर राव गुट नरमपन्थी था और वासवपुनैया- सुन्दरैया-गोपालन -नम्बूदिरीपाद-रणदिवे का धड़ा सापेक्षत: गरमपन्थी संशोधनवादी था। माकपा बनने के बाद सुन्दरैया-गोपालन-वासवपुनैया-प्रमोद दासगुप्ता का गुट गरमदली था जबकि सुरजीत-बसु का गुट नरमदली था। इस प्रकार हम पाते हैं कि सीताराम दरअसल नरमपन्थी संशोधनवाद के नये अवतार हैं जो माकपा को संशोधनवाद के मझधार में और गहराई तक डुबोने की क्षमताओं से लैस हैं। इसका एक मुजाहरा हाल में भूमि अधिग्रहण बिल के मामले में दिखा जब येचुरी सोनिया गाँधी के पिछलग्गू बनकर राष्ट्रपति भवन में विपक्ष के संयुक्त मार्चे के मार्च में शामिल हुए। येचुरी के 'लचीले' और 'मिलनसार' व्यक्तित्व को देखते हुए बिना किसी जोखिम के यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि आने वाले दिनों में संयुक्त मोर्चा बनाने के ऐसे और भी हास्यास्पद नज़ारे देखने को मिलेंगे।

– आनन्द

माकपा की 21वीं कांग्रेस : संशोधनवाद के मलकुण्ड में और भी गहराई से उतरकर मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी की बेशर्म क़वायद

(पेज 8 से आगे)

छोड़ दिया और वह प्रचारात्मक नारा बनकर रह गया। उसकी बजाय वामपन्थी, जनवादी और धर्मनिरपेक्ष गठबन्धन उसका अन्तरिम नारा बन गया। कालान्तर में चुनाव विशेष के लिए चुनावी तालमेल हेतु धर्मनिरपेक्ष पूँजीवादी पार्टियों को जुटाना उसकी पहली प्राथमिकता बन गयी। दूसरे चरण के रूप में संयुक्त आन्दोलन व संघर्षों के ज़रिये साझा न्यूनतम कार्यक्रम पर आधारित तीसरे विकल्प का निर्माण करना था और वामपन्थी-जनवादी मोर्चे के निर्माण का लक्ष्य तीसरे चरण पर खिसक गया। माकपा तात्कालिक ठोस परिस्थितियों का कितना भी हवाला दे ले, विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन का इतिहास हमें बताता है कि संशोधनवाद की फिसलनभरी ढलान पर जो भी पार्टी पहला क़दम रखती है उसका पतन तय होता है और सभी संशोधनवादी पार्टियाँ अपने पतन को छिपाने के लिए बदली हुई तात्कालिक परिस्थितियों का ही हवाला देती हैं। सच तो यह है कि साढ़े तीन दशक पहले जब माकपा ने वामपन्थी-जनवादी मोर्चे की अवधारणा रखी थी उस वक़्त भी वह संसदीय राजनीति की चौहद्दी के बाहर नहीं सोचती थी। जो भी पार्टी बुर्जुआ संसदीय राजनीति को केन्द्र में रखकर अपनी रणनीति और रणकौशल के बारे में फ़ैसले लेगी, उसका हश्र वही होगा जो माकपा का हुआ। लेकिन समीक्षा रिपोर्ट में कहीं भी पार्टी ने अपनी इस मूल ग़लती को नहीं स्वीकारा है, आख़िर वो स्वीकार भी क्यों करती, उसे तो इस फिसलनभरी ढलान पर अभी और आगे जाना है!

समीक्षा रिपोर्ट के बिन्दु 22 में कहा गया है कि तीसरे विकल्प को खड़ा करने में मशगूल रहने की वजह से पार्टी की स्वतन्त्र ताक़त नहीं बढ़ पायी जिसकी वजह से भी धर्मनिरपेक्ष बुर्जुआ दल उसकी ओर आकर्षित नहीं हो पाये। आगे बहुत अफ़सोस जताते हुए रिपोर्ट कहती है कि पिछले लोकसभा चुनाव में क्षेत्रीय बुर्जुआ दल भी उसके साथ विभिन्न राज्यों में चुनावी गठबन्धन बनाने को तैयार नहीं हुए। क्षेत्रीय बुर्जुआ दलों द्वारा भी घास न दिये जाने पर अफ़सोस जताने वाले इन संसदीय जड़वामनों को बताया जाना चाहिए कि दुनिया के हर मुल्क में संशोधनवादियों की यही गत होती है। वे दावा तो यह करते हैं कि वे बुर्जुआ दलों से गँठजोड़ को वामपन्थ को मज़बूत बनाने के लिए रणकौशल के रूप में इस्तेमाल करते हैं, लेकिन वास्तव में होता यह है कि बुर्जुआ दल उन्हें अपना मोहरा बनाते हैं और काम निकलने के बाद उन्हें दूध में से मक्खी की तरह निकाल फेंकते हैं। रिपोर्ट में आगे क्षेत्रीय दलों से नाराज़गी जताते हुए उनके बुर्जुआ चरित्र और उनकी अवसरवादिता का ब्योरा दिया गया है। मज़दूर वर्ग की नुमाइन्दगी का दावा करने वाले इन लाल तोतों से पूछा जाना चाहिए कि क्या पहले उनके साथ गलबहियाँ करते वक़्त उन्हें उनके चरित्र के बारे में नहीं पता था? हद की बात तो यह है कि उनके चरित्र के बारे में बयान करने के बावजूद भविष्य में उनके साथ चुनावी तालमेल और गँठजोड़ बनाने का विकल्प अभी भी खुला रखा गया है। बिन्दु 30 में साफ़ कहा गया है कि भविष्य में बुर्जुआ दलों के आपसी अन्तरविरोध फिर से उभर सकते हैं। रिपोर्ट में विशेष रूप से रेखांकित किया गया है कि ऐसी परिस्थिति में पार्टी को लचीला रुख़ अपनाना होगा। यानी एक बार फिर से इन्हीं बुर्जुआ दलों का पिछलग्गू बनने की पटकथा लिखी जा चुकी है।

रिपोर्ट में पार्टी ने अपने कुछ छोटे कुकर्मों को तो दबी जबान से स्वीकार किया है लेकिन अपने बड़े कुकर्मों पर चुप्पी साध ली है। मसलन पार्टी ने स्वीकार किया है कि 1996-98 के दौरान तत्कालीन संयुक्त मोर्चा सरकार को बनाये रखने के लिए उसकी नवउदारवादी नीतियों की अनदेखी करना एक ग़लती थी, लेकिन पूरी रिपोर्ट में कहीं भी बेलागलपेट यह बात नहीं स्वीकार की है कि पश्चिम बंगाल में उसकी सरकार ने स्वयं नवउदारवादी नीतियों को निहायत ही बेशर्मी से लागू किया जिसकी वजह से उसका जनाधार ख़त्म हुआ। बिन्दु 38 में दबी जबान में बस इतना कहा गया है कि नन्दीग्राम में भूमि अधिग्रहण को पूरे देश ने कॉरपोरेट के नवउदारवादी एजेण्डे के हिस्से के रूप में देखा और भविष्य में पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा लिए गये फ़ैसलों की आलोचनात्मक पड़ताल करनी होगी। कुल मिलाकर पार्टी के कहने का आशय यह है कि उसकी मंशा तो कॉरपोरेट को फ़ायदा पहुँचाने की नहीं थी, लेकिन लोगों ने उसको ग़लत समझा। संसद के सुअरबाड़े में लोट लगाने को आतुर इन संसदीय खिलन्दड़ों को कोई बताने वाला नहीं है कि उस घटना के इतने साल बीतने के बाद भी उन्हें अपने फ़ैसलों के आलोचनात्मक विश्लेषण करने के लिए समय नहीं मिला तो जनता इन्तज़ार थोड़े ही करेगी, उसने तो खुद की पड़ताल करके अपना फ़ैसला सुना दिया है।

रिपोर्ट के बिन्दु 47 में संसदवाद की परिभाषा देते हुए बताया गया है कि संसदवाद एक सुधारवादी दृष्टिकोण है जो पार्टी की गतिविधियों को चुनावी दायरे में सीमित रखता है और यह भ्रम पैदा करता है कि केवल चुनाव लड़कर ही पार्टी की बढ़त सुनिश्चित की जा सकती है। यह जनान्दोलनों को संगठित करने, पार्टी के निर्माण एवं विचारधारात्मक संघर्ष की अनदेखी की दिशा में ले जाता है। यदि माकपा अपनी ही बतायी गयी इस परिभाषा को ईमानदारी से खुद पर लागू करने का साहस करती तो इस रिपोर्ट में उसने स्वीकार किया होता कि वह खुद एक संसदवादी पार्टी है। लेकिन संशोधनवादी गीदड़ों से क्रान्तिकारी साहस की अपेक्षा करना बेवक़ूफ़ी होगी।

माकपा अपने संशोधनवादी चरित्र को छिपाने की कितनी भी कोशिश करे, उसके खुद के दस्तावेज़ उसके संशोधनवादी चरित्र को उजागर कर देते हैं। मसलन संसदवाद की परिभाषा देने के बाद रिपोर्ट के बिन्दु 47 में आगे जोड़ा गया है कि पार्टी को संसदीय और संसदेतर कामों को एक साथ किये जाने की आवश्यकता है। पार्टी के संसदीय कामों के साथ संसदेतर कामों को जोड़कर अपने संशोधनवादी चरित्र को छिपाने की भरपूर कोशिश की है। लेकिन संसदेतर कामों को संसदीय कामों के समतुल्य रखना अपनेआप में संशोधनवाद की निशानी है। कम्युनिज़्म का सिर्फ़ बुनियादी ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी यह जानता है कि एक कम्युनिस्ट पार्टी संसदेतर कामों को ही अपनी मुख्य रणनीति मानती है और संसदीय काम कभी भी संसदेतर कामों के समतुल्य नहीं हो सकते।

माकपा की 21वीं कांग्रेस में पारित राजनीतिक प्रस्ताव भी उसके संशोधनवादी चरित्र को उघाड़कर रख देता है। मज़दूर वर्ग से अपनी ग़द्दारी को छिपाने-ढाँकने के लिए इस प्रस्ताव में कुछ अन्य देशों में वामपन्थ की बढ़त का गर्वपूर्वक हवाला दिया है। मसलन यूनान में सिरिज़ा की जीत को नवउदारवाद के ख़िलाफ़ एक बड़ी जीत बताया गया है, जबकि इस कांग्रेस के पहले ही सिरिज़ा द्वारा नवउदारवाद के सामने घुटने टेकने की ख़बरें आ चुकी थीं। इसी तरह स्पेन में पोदेमॉस नामक नयी पार्टी के उभार की भी ख़ूब तारीफ़ की गयी है। ग़ौरतलब है कि विचारधारात्मक अन्तर्वस्तु के लिहाज़ से पोदेमॉस काफ़ी कुछ भारत की आम आदमी पार्टी से मिलती-जुलती है। वैसे इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। आम आदमी पार्टी को लेकर भी माकपा काफ़ी उत्साहित दिख रही है और उससे काफ़ी कुछ सीखने की बातें कर चुकी है।

राजनीतिक प्रस्ताव में पार्टी ने लातिन अमेरिकी देशों में वामपन्थ की बढ़त को विशेष रूप से रेखांकित किया है। ग़ौरतलब है कि लातिन अमेरिकी देशों में जो वामपन्थी पार्टियाँ शासन कर रही हैं उन्होंने अधिक से अधिक एक कल्याणकारी बुर्जुआ राज्य का निर्माण किया है। कोई कम्युनिस्ट पार्टी ऐसे कल्याणकारी बुर्जुआ राज्य को समाजवाद के मॉडल की तरह प्रस्तुत करके बल्ले-बल्ले करे तो इससे उसका खुद का चरित्र उजागर हो जाता है। यही नहीं माकपा ने इस प्रस्ताव में चीन को एक समाजवादी देशों की श्रेणी में शीर्ष का दर्ज़ा दिया है। ग़ौरतलब है कि माकपा सोवियत संघ को 1991 में उसके विघटन से पहले तक समाजवादी मानती आयी थी। उसी तर्क से वह चीन को आज भी समाजवादी मानती है और तब तक मानती रहेगी जब तक कि वहाँ शासन करने वाली पार्टी अपने आपको कम्युनिस्ट पार्टी कहती रहेगी। यानी माकपा उत्पादन सम्बन्धों के आधार पर नहीं बल्कि शासन करने वाली पार्टी के नामकरण के आधार पर किसी देश को समाजवादी मानती है। तो यह है इस पार्टी का वैचारिक स्तर! वैसे इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है। एक संशोधनवादी पार्टी से इससे ज़्यादा वैचारिक परिपक्वता की उम्मीद करनी भी नहीं चाहिए।

अपने राजनीतिक प्रस्ताव में पार्टी ने वामपन्थी-जनवादी मोर्चा बनाने की अपने भावी योजना के लिए कार्यक्रम की जो रूपरेखा दी है वह कल्याणकारी राज्य का वही कीन्सियाई नुस्ख़ा है जिसे वह अपने जन्मकाल से ही दोहराती आयी है। यानी ढाक के वही तीन पात। पार्टी को अभी भी इस सच्चाई को हलक़ से उतारना मुश्किल हो रहा है कि कल्याणकारी राज्य का दौर समाप्त हो चुका है। लेकिन 'जब तक बौद्धभिक्खु रहेंगे तब तक घण्टा हिलायेंगे' की तर्ज़ पर जब तक इन संशोधनवादी लालतोतों का अस्तित्व रहेगा, तब तक ये कीन्सियाई नुस्खों का घण्टा हिलाकर लोगों में भ्रम पैदा करते रहेंगे। गनीमत यह है कि पूरी दुनिया के पैमाने पर कल्याणकारी बुर्जुआ राज्य बनाने के कीन्सियाई नुस्खे इतिहास की चीज़ बन चुके हैं। माकपा के नये महासचिव सीताराम येचुरी अपने साक्षात्कारों में कहते आये हैं कि मार्क्सवाद ठोस परिस्थितियों को ठोस विश्लेषण करना सिखाता है। अब कोई उन्हें यह बताये कि ठोस परिस्थितियों का ठोस विश्लेषण तो यह बता रहा है कि माकपा बहुत तेज़ी से इतिहास की कचरापेटी की ओर बढ़ती जा रही है। हाँ यह ज़रूर है कि इतिहास की कचरापेटी के हवाले होने से पहले चुनावी तराजू में पलड़ा भारी करने के लिए बटखरे के रूप में बुर्जुआ दलों के लिए उसकी भूमिका बनी रहेगी।

– आनन्द

संशोधनवादियों के संसदीय जड़वामनवाद (यानी संसदीय मार्ग से लोक जनवाद या समाजवाद लाने की सोच) के विरुद्ध लेनिन की कुछ उक्तियाँ

"बर्नस्टीनवादियों ने मार्क्सवाद को उसके प्रत्यक्ष क्रान्तिकारी पहलू को छोड़कर स्वीकार किया है और कर रहे हैं। वे संसदीय मार्ग को निश्चित ऐतिहासिक कालों के लिए ख़ास तौर पर अनुकूल हथियार नहीं समझते, बल्कि संघर्ष का मुख्य और लगभग एकमात्र रूप समझते हैं, जो "बल प्रयोग करने", "सत्ता हथियाने" और "अधिनायकत्व" को अनावश्यक समझता है।"

('कैडटों की विजय और श्रमिक पार्टी के कार्य', ग्रंथावली, अंग्रेज़ी संस्करण, मास्को, 1962, ग्रंथ-10, पृ. 249)

"सिर्फ़ शोहदे और बेवकूफ़ लोग ही यह सोच सकते हैं कि सर्वहारा वर्ग को पूँजीपति वर्ग के जुवे के नीचे, उजरती गुलामी के जुवे के नीचे, कराये गये चुनावों में बहुमत प्राप्त करना चाहिए, तथा सत्ता बाद में प्राप्त करनी चाहिए। यह बेवकफ़ूी या पाखण्ड की इन्तहा है, यह वर्ग संघर्ष और क्रान्ति की जगह पुरानी व्यवस्था और पुरानी सत्ता के अधीन चुनाव को अपनाना है।"

('इतालवी, जर्मन और फ्रांसीसी कम्युनिस्टों का अभिनन्दन', ग्रंथावली, चौथा रूसी संस्करण, ग्रंथ-30, पृ.40)

"यह दलील देना कि मार्क्स ने उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में इंग्लैण्ड और अमेरिका में समाजवाद में शान्तिपूर्ण संक्रमण की सम्भावना को मान लिया था, एक कुतर्कवादी दलील है, या साफ-साफ कहा जाये तो एक दग़ाबाज़ की दलील है, जो उद्धरणों और सन्दर्भों के साथ खिलवाड़ करता है। पहली बात तो यह कि मार्क्स ने उस समय भी इस सम्भावना को एक अपवाद माना था। दूसरे, उन दिनों इजारेदार पूँजीवाद, यानी साम्राज्यवाद अस्तित्व में नहीं आया था। तीसरे, इग्लैण्ड और अमेरिका में उस समय ऐसी कोई फौज नहीं थी – जैसी कि आज है – जो पूँजीवादी राज्य मशीनरी के मुख्य साधन की भूमिका अदा करती हो।"

('सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की', संकलित रचनाएँ, अंग्रेज़ी संस्करण, इण्टरनेशनल पब्लिशर्स, न्यूयार्क, 1945, ग्रंथ-23, पृ. 233-234)

"क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी को पूँजीवादी संसद-व्यवस्था में इसलिए हिस्सा लेना चाहिए, ताकि जनता को जगाया जा सके, और यह काम चुनाव के दौरान तथा संसद में अलग-अलग पार्टियों के बीच के संघर्ष के दौरान किया जा सकता है। लेकिन वर्ग संघर्ष को केवल संसदीय संघर्ष तक ही सीमित रखने, अथवा संसदीय संघर्ष को इतना ऊँचा और निर्णायक रूप देने कि संघर्ष के बाकी सब रूप उसके अधीन हो जायें, का मतलब वास्तव में पूँजीपति वर्ग के पक्ष में चले जाना और सर्वहारा वर्ग के ख़िलाफ़ हो जाना है।"

('संविधान सभा के चुनाव और सर्वहारा अधिनायकत्व', अंग्रेज़ी संस्करण, मास्को, 1954, पृ.36)

हाशिमपुरा से तेलंगाना और चित्तूर तक भारतीय पूँजीवादी जनवाद के ख़ूनी जबड़ों की दास्तान

वर्ष 1987 की गर्मियों के दिन हैं। भारत का शाषक वर्ग संकट से गुज़र रहा है। इस संकट में साम्प्रदायिक राजनीति का पत्ता खेलना इसको ख़ूब रास आ रहा है। बाबरी मस्जिद का शोर शिखरों पर है। 22 मई को मेरठ के हाशिमपुरा गाँव में पीएसी के जवानों का ट्रक आ रुका है और देखते-देखते 40-50 मुसलमानों को बन्दूकों की नोक पर ट्रक में चढ़ा लिया गया और ट्रक गाँव से रवाना हो गया। ...रात पड़ चुकी है, ट्रक गाजियाबाद नहर के किनारे खड़ा है। गोलियाँ चलने की आवाज़, कुछ भाग-दौड़ और ट्रक फिर से चल पड़ा ... और पीछे छोड़ गया ख़ून साथ लथपथ धरती, सहमीं हुई झाड़ियों, कुछ दर्दनाक आवाज़ों और रंगत बदलता नहर का पानी। 42 बेदोशे मुसलमान भारतीय लोकतन्त्र के ख़ूनी जबड़ों का शिकार बन चुके हैं।

21 मार्च 2015 को दिल्ली की तीस हज़ारी कोर्ट का एक गुनगुना दिन। हाशिमपुरा हत्याकाण्ड को 28 वर्ष बीत चुके हैं। 42 क़त्लों के लिए 16 जवानों पर मुक़दमा दर्ज हुआ था परन्तु आज तक कोई फ़ैसला नहीं हुआ, शायद आज हो जाये।... अदालत का फ़ैसला आ गया और 16 जवानों को सबूतों की कमी के चलते बरी कर दिया गया। पुलिस द्वारा उन 42 लोगों को ज़बरदस्ती ट्रक में चढ़ाये जाने का पूरा गाँव गवाह है, नहर पर गोली खाने वालों में से भी कुछ लोग मौत के मुँह से बचकर सारी कहानी बयान कर चुके हैं तथा और सबूतों के तौर पर फ़ोरैंसिक जाँच से यह देखा जा सकता था कि लाशों में मिली गोलियाँ पुलिस की बन्दूकों में से ही चली थीं ...परन्तु भारतीय लोकतन्त्र को कोई सबूत नहीं दिखा।

7 मई 2015 की सुबह, भारतीय लोकतन्त्र का प्रधानमन्त्री "विकास", "आज़ादी", "बराबरी" के लच्छेदार भाषण घड़ रहा है। मीडिया की मेहरबानी से भारत की "बुद्धिमान" आबादी का एक बड़ा हिस्सा भारतीय पूँजीवादी लोकतन्त्र के सबसे "ज्वलन्त मुद्दे" 'आप' पार्टी की खींचोतान के "चिन्तन" में डूबा हुआ है। लोकतान्त्रिक आज़ादी मानते "पढ़े-लिखों" के एक बड़े हिस्से को मीडिया ने क्रिकेट की 'आईपीएल' के नये शुरू हो रहे शैशन से सम्बन्धित आगामी "विश्लेषणों" में उलझा रखा हुआ है और तेलंगाना में पाँच मुलसमान क़ैदियों को पेशी पर ले जा रही पुलिस ने रास्ते में फ़र्ज़ी मुकाबले बनाकर कत्ल कर दिया है। यह कहा जा रहा है कि मारे गये दोषियों के आतंकवादी संगठन 'सिमी' के साथ सम्बन्ध थे, परन्तु इससे सम्बन्धित अभी अदालत की कार्यवाही चल रही थी और यह साबित नहीं हुआ था। इस मामले में पुलिस के बयान आपा-विरोधी हैं। 17 पुलिस कर्मचारी इन पाँच क़ैदियों को ले जा रहे थे और पुलिस का कहना है कि रास्ते में हाथापाई हुई और वह पुलिस पर भारी पड़ गये जिसके चलते मजबूरन गोली चलानी पड़ी। पहले कहा गया कि दो क़ैदियों के पेशाब जाने के लिए हाथ खोले गये थे, फिर कहा गया कि पाँच की ही हथकड़ियाँ खोली गयी थीं (!)। लाशों की सामने आयी तस्वीरों में हथकड़ियाँ लगीं साफ़ दिखायी दे रही हैं जो पूरी कहानी बयान रही हैं।

उधर इसी समय आन्ध्र प्रदेश के चित्तूर ज़िले के जंगलों में भी इस लोकतन्त्र की रखवाली पुलिस 20 जीते-जागते मनुष्यों की बेरहमी के साथ हत्या कर चुकी है। अगले दिन अख़बारों में ख़बर आयी - 'आन्ध्र प्रदेश में पुलिस के साथ मुठभेड़ में 20 तस्कर हलाक।' भारतीय मध्यवर्ग के लिए यह आम सी ख़बर ही है क्योंकि उनको तो बस 'आप' के तमाशे, आईपीएल के "युद्ध" और इन जैसी अन्य बेहुदा घटनाओं की ही फ़िक्र है। बुद्धिजीवी वर्ग जनवाद के गुणगान कर रहा है।

पुलिस ने बयान दिया कि उन्हें सूचना मिली थी कि जंगल में तस्कर लाल चन्दन की लकड़ काट रहे हैं। जब 'लाल चन्दन तस्करी विरोधी टास्क फ़ोर्स' वहाँ पहुँची तो 150 से भी ज़्यादा तस्करों ने पत्थरों, कुलहाड़ियों आदि के साथ उन पर हमला कर दिया और मजबूरन पुलिस को जवाबी कार्रवाई करनी पड़ी जिसमें 20 तस्कर मारे गये और बाक़ी फरार हो गये। कुछ जनवादी अधिकारों और मानवीय अधिकारों से सम्बन्धित संगठनों ने 'तथ्य खोज समितियाँ' बनाकर पूरे मामले की सच्चाई सामने लाने का यत्न किया। पुलिस ने कोई जानकारी और सफ़ाई देने की जगह 12 कारकुनों पर ही पर्चा दर्ज कर दिया। इन संगठनों के यतनों की वजह से इस मामले का सत्य सामने आया और इस मामले के फ़र्ज़ी होने से सम्बन्धित ये बातें सामने आयीं -

1.) जिस जगह यह फ़र्ज़ी मुकाबला हुआ, न तो उस जंगल में लाल चन्दन की लकड़ी है और न ही कई किलोमीटर तक और कहीं है।

2.) ख़ून के धब्बे सिर्फ़ लाशों पर ही हैं। इधर-उधर कहीं भी ख़ून और भाग-दौड़ के निशान नहीं हैं।

3.) मारे गये लोगों की लाशों के बिना कहीं भी धरती या वृक्षों पर गोलियों के निशान नहीं हैं।

4.) गोलियाँ लाशों के आर-पार निकली थीं, मतलब उनको काफ़ी पास से गोली मारी गयी थी।

5.) मुकाबले की जगह से जो लाल चन्दन की लकड़ी मिली है वह पूरी तरह साफ़ थी और काफ़ी समय से काटी हुई थी। लकड़ी के कम गिनती के लट्ठे ही घटनास्थल पर मिले हैं, अगर 150 से भी ज़्यादा तस्कर थे तो बाक़ी की लकड़ी किधर गयी?

6.) सब लाशें ख़ाली जगह पर थी और सीधी थी, मतलब उनको मरने के बाद लिटाया गया था और कोई भी लाश किसी वृक्ष, झाड़ी आदि की ओट में नहीं थी।

7.) पुलिस का दावा था कि तस्करों ने उन पर पत्थरों के साथ हमला किया जिसके चलते उनको जवाबी कार्रवाई करनी पड़ी, परन्तु घटना की जगह पर इस तरह का कोई सुराग नहीं मिला जिससे यह साबित हो सके कि पत्थरबाज़ी हुई थी।

8.) कई लाशों में से बदबू आ रही थी, मतलब वे लोग पहले मारे जा चुके थे और कईयों के शरीर पर कष्ट देने के निशान भी थे।

9.) इस मुकाबले में एक भी पुलिस कर्मचारी जख्मी नहीं हुआ।

इस घटना के बाद तमिलनाडु के एक गाँव के शेखर नामी व्यक्ति ने बताया कि मारे गये लोगों में से 7 को तमिलनाडु-आन्ध्र प्रदेश सरहद पर से उसके सामने ही पुलिस ने बस में से उतारा था। वह ख़ुद एक औरत के साथ बैठा होने के कारण बच गया। इसके बाद दो अन्य गवाह भी सामने आ चुके हैं जिन्होंने इस बात की पुष्टि की कि मारे गये मज़दूरों को पुलिस ने एक दिन पहले गिरफ़्तार किया था।

चित्तूर का हत्याकाण्ड भारत में हुए योजनाबद्ध फ़र्ज़ी मुकाबलों में किये गये बड़े कत्लेआमों में एक बन गया है। यह भारतीय पूँजीवादी लोकतन्त्र का खूँखार चेहरा पेश करता एक और सबूत है। एक बार फिर साबित हो गया कि पूँजीवादी जनवाद सिर्फ़ पूँजीपतियों, अमीरों और उनके टुकड़बाज़ों के लिए ही जनवाद है, बहुसंख्यक मेहनतकश, मज़दूर आबादी के लिए यह भयानक तानाशाही है। इस घटना के साथ ही संसदीय सूअरवाड़े के नेताओं को गत्ते की तलवारे भाँजने का एक और मुद्दा मिल गया है, जिसका पहले की तरह कोई सार्थक नतीजा नहीं निकलने वाला। शोर पड़ने पर मुक़दमे और जाँच का तमाशा शुरू हुआ है, परन्तु पहले सरकारी कत्ल की तरह इसमें भी ज़्यादा से ज़्यादा निचले दर्जे के कुछ कर्मचारियों को सज़ा देने से ज़्यादा कुछ नहीं होने वाला। चित्तूर वाले मामले की तो छानबीन ही पुलिस विभाग को सौंपी गयी है, मतलब अब कातिल ख़ुद अपनी जाँच करके अपने दोषी या निर्दोष होने के बारे में बतायेंगे! वैसे भारतीय लोकतन्त्र की यह छानबीन कैसे चलेगी और इसका क्या नतीजा निकलेगा, वह हाशिमपुरा बता चुका है।

सत्ता की तरफ़ से इस तरह किये जाने वाले कत्लेआमों का सिलसिला बहुत लम्बा है। इस तरह का एक और बड़ा हत्याकाण्ड 2012 का कश्मीर का ध्यान में आता है जब पत्थर चला रही भीड़ पर पुलिस ने गोलियाँ चला दीं और 112 लोगों को मौत के घाट उतार दिया, इनमें एक 11 साल का बच्चा भी था। ऐसे सरकारी ज़बरों का कहर पूरे देश में दशकों से जारी है। पंजाब में दहशतगर्दी के दौर में बने हज़ारों फ़र्ज़ी मुकाबलों को कौन भूल सकता है, जिनकी वजह से अनेकों खाकी वर्दियाँ पर तगमे और सितारे टाँगे गये। कश्मीर और पूर्वी भारत के सूबों में तो 'अफ़स्पा' जैसे तानाशाह किस्म के क़ानून बनाये गये हैं जिनके तहत शक के आधार पर ही किसी को गोली मारी जा सकती है। झूठे मुकाबलों से बिना पुलिस हिरासत में मौतों की भी कोई संख्या नहीं है। इन सबमें एक बात साझी है कि मारे गये लोग आम मेहनतकश, मज़दूर परिवारों के साथ सम्बन्ध रखते हैं या फिर राष्ट्रीय और धार्मिक अल्प-संख्याओं के साथ।

यह तो साफ़ ही है कि इतने बड़े फ़र्ज़ी मुकाबले और हत्याकाण्ड निचले स्तर के कर्मचारियों, अधिकारियों के बस की बात नहीं है। इनमें पुलिस, फ़ौज के अतिरिक्त अफ़सरों से लेकर सरकारों में बैठे राजनैतिक नेता शामिल होते हैं। हर हत्याकाण्ड समूचे पूँजीपति वर्ग या फिर कुछ ख़ास पूँजीपतियों के हितों के साथ जुड़ा होता है। हाशिमपुरे के हत्याकाण्ड से लेकर अदालती फ़ैसले तक की दास्तान चीख़-चीख़कर यही बयान कर रही है। तेलंगाना हत्याकाण्ड के पास तो "आतंकवाद" का बुर्का भी तो है और आतंकवाद को तो भारतीय लोकतन्त्र कहाँ छोड़ता है (अफ़ज़ल गुरू याद ही होगा!)। जहाँ तक चित्तूर हत्याकाण्ड का सवाल है तो भी लाल चन्दन की लकड़ी के कारोबार के साथ जुड़ा हुआ है। इस लकड़ी की क़ीमत तीन हज़ार रुपये प्रति किलोग्राम तक है और इसकी अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में काफ़ी माँग है। आन्ध्र प्रदेश में यह कारोबार करने वाले पूँजीपतियों के कई गिरोह हैं जिनके स्थानीय जंगलात विभाग के अफ़सरों से लेकर राज्य और केन्द्र सरकार तक अच्छी मिली-भगत है जिसके दम पर ये अरबों का कारोबार करते हैं।

पेज 12 पर जारी)

मई दिवस के अवसर पर मज़दूर शहीदों को याद किया, पूँजी की ग़ुलामी के ख़िलाफ़ संघर्ष आगे बढ़ाने का संकल्प लिया

दिल्ली के वजीरपुर में तीन दिवसीय मज़दूर मेले का आयोजन

मालिकों द्वारा पैदा की गयी अड़चनों के कारण मेले का आयोजन न हो पाने के बावजूद मज़दूरों ने सांस्कृतिक सन्ध्या व मज़दूर सभा के रूप में मई दिवस मनाया

मालिकों को मज़दूरों के जश्न कितने खलते हैं, इसका अन्दाज़ा वज़ीरपुर में मज़दूर मेले के आयोजन को असफल करने के प्रयासों से लगाया जा सकता है। परन्तु तमाम करतूतों के बावजूद मज़दूरों की हुँकार को वे नहीं रोक पाये। मज़दूर मेले के कार्यक्रम को रोकने के लिए मालिकों ने एमसीडी के एक दलाल अफ़सर का सहारा लिया। मेले के पहले दिन 29 अप्रैल को राजा पार्क में जब यूनियन के कार्यकर्ता स्टेज व साज-सज्जा के काम की शुरुआत करने जा रहे थे, तभी पार्क के लिए ज़िम्मेदार एमसीडी कर्मचारी रुकावट पैदा करने लगे। हालाँकि उस पार्क में मेले के आयोजन के लिए पहले ही निगम पार्षद पूनम भारद्वाज से अनुमति ली जा चुकी थी। इसी कारण मज़दूरों द्वारा बुक किये गये कई ठेलेवाले व झूलेवाले भी पार्क में नहीं पहुँचे। लेकिन फिर भी मज़दूर पार्क में आये व मेले में बच्चों द्वारा प्रस्तुत गीतों का आनन्द लिया।

मेले के दूसरे दिन भी मालिकों ने एमसीडी के अफ़सरों को भेजवाकर राजा पार्क में मेला लगाने में रुकावटें पैदा कीं। इसके कारण मज़दूर पूरा मंच उठाकर झुग्गी के मछली मार्केट में ले गये और वहाँ मंच लगाकर सांस्कृतिक सन्ध्या का आयोजन किया, जिसमें विहान सांस्कृतिक टोली ने गीतों की प्रस्तुति की, वजीरपुर के बच्चों द्वारा तैयार किया गया नाटक 'सरकारी साड़' का मंचन किया गया, इसके साथ ही मज़दूरों द्वारा मज़दूरों की ज़िन्दगी को बयान करता 'मशीन' नाटक पेश किया गया। यूनियन की तरफ़ से शिवानी ने मज़दूरों को सम्बोधित करते हुए उनको मई दिवस के गौरवशाली इतहास से परिचित कराया। अन्त में मंच से यह एलान किया गया कि 1 मई को राजा पार्क में मज़दूर सभा के रूप में मज़दूर दिवस को मनाया जायेगा। 1 मई को राजा पार्क में मज़दूर सभा का आयोजन किया गया, जिसमें मई दिवस की कहानी पोस्टरों की जुबानी बयान की गयी। यूनियन की ओर से बात रखते हुए सनी ने बताया कि मई दिवस मज़दूरों का राजनीतिक चेतना में प्रवेश की यादिहानी के लिए मनाया जाता है। शिवानी ने मज़दूरों को बताया कि किस प्रकार 8 घण्टे काम के क़ानून को पास करवाने की लड़ाई में पूरी दुनिया के मज़दूरों ने अपना ख़ून बहाया है। इसके साथ ही वजीरपुर के मज़दूरों के संघर्ष पर बनी फ़िल्म - 'स्टील मज़दूरों के संघर्ष की कहानी' भी दिखायी गयी। मंच से मज़दूर क्लिनिक की शुरुआत की घोषणा की गयी और आधार कार्ड व पहचान कार्ड के लिए कैम्प लगाने की भी घोषणा की गयी।

– बिगुल संवाददाता

लुधियाना में मज़दूर दिवस सम्मेलन

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के अवसर पर लुधियाना में टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, पंजाब और कारख़ाना मज़दूर यूनियन, पंजाब द्वारा आयोजित मज़दूर दिवस सम्मेलन में मज़दूरों के बड़े एकठ ने मई दिवस के महान मज़दूर शहीदों को श्रद्धांजलि भेंट की और पूँजीवादी शोषण के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष जारी रखने का ऐलान किया। अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर वर्ग का क्रान्तिकारी लाल झण्डा फहराकर और गगनभेदी नारों के साथ मई दिवस के शहीदों को सलामी दी गयी। क्रान्तिकारी संस्कृतिक मंच 'दस्तक' द्वारा क्रान्तिकारी-प्रगतिशील गीत-संगीत और नौजवान भारत सभा द्वारा नाटक पेश किये गये। इसके बाद विभिन्न संगठनों के वक्ताओं - टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन के अध्यक्ष राजविन्दर, कारख़ाना मज़दूर यूनियन के अध्यक्ष लखविन्दर, पंजाब स्टूडैंट्स यूनियन (ललकार) के संयोजक छिन्दरपाल, नौजवान भारत सभा की ओर से बिन्नी आदि ने सम्मेलन को सम्बोधित किया। इस अवसर पर क्रान्तिकारी-प्रगतिशील किताबों -पोस्टरों की प्रदर्शनी भी लगायी गयी।

विभिन्न वक्ताओं ने कहा कि आठ घण्टे काम दिहाड़ी का क़ानून बनवाने के लिए पूरे विश्व के मज़दूरों ने संघर्ष किया है। उन्नीसवीं सदी में अमेरिकी औद्योगिक मज़दूरों ने 'आठ घण्टे काम, आठ घण्टे आराम, आठ घण्टे मनोरंजन' के नारे के तहत बेहद शानदार, कुर्बानियों से भरा जुझारू संघर्ष किया था। पहली मई 1886 को अमेरिकी मज़दूरों ने देशव्यापी हड़ताल की थी जिसका अमेरिकी हाकिमों ने दमन किया था। दमन द्वारा मज़दूरों की आवाज़ को दबाया नहीं जा सका। आगे चलकर पूरे विश्व में आठ घण्टे काम दिहाड़ी, जायज मज़दूरी और अन्य अनेकों अधिकारों के लिए मज़दूरों के संघर्ष आगे बढ़े और विश्व भर की सरकारों को मज़दूरों को संवैधानिक अधिकार देने पड़े। रूस, चीन जैसे देशों में मज़दूर हक़ूमतें स्थापित हुईं जिनके द्वारा मानवता ने शानदार उपलब्धियाँ हासिल कीं। वक्ताओं ने कहा कि मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत मज़दूरों को अपने समस्त अधिकारों के लिए पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ एकजुट संघर्ष करने के लिए न सिर्फ़ प्रेरित करती रही है और करती रहेगी बल्कि मज़दूरों को इस संघर्ष के लिए रास्ता भी दिखाती रही है और दिखाती रहेगी।

वक्ताओं ने कहा कि अतीत में अनेकों क़ुर्बानियों द्वारा हासिल किये गये अधिकार मज़दूरों की एकता बिखरने के कारण पूँजीवादी हुक्मरानों द्वारा लगातार छीने जाते रहे हैं। मज़दूर अधिकारों पर हमला पूरे विश्व में तेज़ हो रहा है। भारत के मज़दूर आज बेहद बुरी हालत में दिन काटने पर मज़बूर हैं। सभी पार्टियों की सरकारें मज़दूर विरोधी-जनविरोधी निजीकरण, उदारीकरण, वैश्वीकरण की नीतियों पर चल रही हैं। मोदी सरकार दूसरी सभी सरकारों से कहीं अधिक अत्याचारी है, और जनता ख़ासकर औद्योगिक मज़दूरों के हक़ों पर बुलडोज़र चला रही है। इसके ख़िलाफ़ आज मज़दूरों के ज़बरदस्त संघर्ष की ज़रूरत है। एटक, सीटू, बीएमएस, इंटक जैसी चुनावी पार्टियों से सम्बन्धित ट्रेड यूनियन संगठन मज़दूर वर्ग की पीठ में छुरा घोंप रहे हैं, पूँजीपतियों की दलाली कर रहे हैं। ऐसे समय में मज़दूर वर्ग को मई दिवस की महान विरासत से प्रेरणा लेकर अपने जुझारू संगठन बनाने होंगे। अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस की क्रान्तिकारी परम्परा को आगे बढ़ाने का संकल्प लेते हुए, क्रान्तिकारी गीतों और जोशीले नारों के साथ मज़दूर दिवस सम्मेलन की समाप्ति की गयी।

दोनों यूनियनों द्वारा मज़दूर दिवस सम्मेलन की तैयारी के लिए लुधियाना में दस दिनों का सघन प्रचार अभियान चलाया गया था। बड़े स्तर पर मज़दूर बस्तियों, कारख़ाना इलाक़ों में पर्चे बाँटे गये, मीटिंगें की गयीं, घर-घर प्रचार किया गया, आठ जगहों पर 'लड़ाई ज़ारी है - मई दिवस की कहानी' लघु दस्तावेज़ी फ़िल्म बड़े पर्दे पर दिखायी गयी। इस प्रचार अभियान के दौरान मज़दूरों को मई दिवस के क्रान्तिकारी महत्व से परिचित कराया गया।

– बिगुल संवाददात

बरगदवां, गोरखपुर में मई दिवस पर जुलूस और सभा

गोरखपुर के बरगदवा औद्योगिक क्षेत्र में मालिकान के तमाम हथकण्डों के बावजूद मज़दूर हर वर्ष मई दिवस का आयोजन करके संघर्ष जारी रखने का संकल्प लेते हैं। इस वर्ष भी कई कारख़ानों के मज़दूरों ने बिगुल मज़दूर दस्ता के साथ मिलकर बरगदवा में मई दिवस पर पूरे दिन का कार्यक्रम आयोजित किया जिसमें मालिकों और प्रशासन की सारी कोशिशों के बावजूद भारी संख्या में मज़दूर शामिल हुए।

मई दिवस के कार्यक्रम की तैयारी देखकर यहाँ के मालिक बौखलाये थे। उन्होंने पहले ही कारख़ाने बन्द कर दिये थे। मालिकों के कहने पर कार्यक्रम स्थल पर पहले ही पुलिस और पीएसी की भारी तैनाती कर दी गयी थी। लेकिन मज़दूरों पर दबाव बनाने के लिए मालिकों का कोई हथकण्डा काम न आया। मज़दूरों की सभा में वक्ताओं ने कहा कि मज़दूरों के सामान्य कार्यक्रमों में भी इस तरह से बूटों की धमक आने वाले दिनों की ही झलक है। सारे श्रम क़ानूनों को एक-एक करके रद्द किया जा रहा है। आगे मज़दूरों को इकठ्ठा होने पर रोक लगाने, प्रदर्शनों, आन्दोलनों का निरंकुश दमन करने के लिए शासक वर्ग पूरी तैयारी कर रहा है। मज़दूरों को भी अपनी व्यापक तैयारी में लग जाना चाहिए।

सभा में बिगुल मज़दूर दस्ता के प्रसेन और अंगद, स्त्री मुक्ति लीग की निशू, इंजीनियरिंग वर्कर्स यूनियन (लक्ष्मी साइकिल वर्क्स) के रामाशीष सहित अनेक वक्ताओं ने मई दिवस के शहीदों को याद करते हुए कहा कि हमें अपने रोज़-रोज़ के संघर्षों के साथ ही पूरी पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ लम्बी लड़ाई की भी तैयारी करनी होगी। तभी शोषण और अन्याय से मज़दूरों की मुक्ति का मई दिवस के शहीदों का सपना पूरा होगा।

जनसभा में 'मशीन' नाटक तथा क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये गये। इसके बाद मज़दूरों ने पूरे औद्योगिक क्षेत्र से होते हुए गोरखनाथ तक जुलूस निकाला। **– बिगुल संवाददाता**

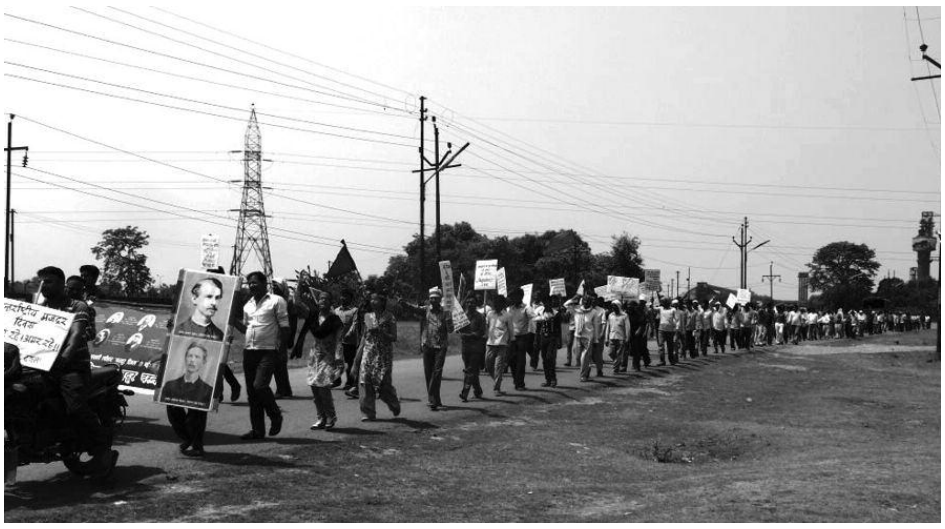

मुम्बई में मई दिवस पर नुक्कड़ सभाएँ और नाटक

129 वें 'अर्न्तराष्ट्रीय मजदूर दिवस' के अवसर पर मुम्बई में बिगुल मजदूर दस्ता व नौजवान भारत सभा ने मानखुर्द के लेबर चौक, साठेनगर व अन्य जगहों पर आज नुक्कड़ नाटक, क्रान्तिकारी गीत, सभाएं व पर्चों का वितरण करते हुए मजदूरों से अपने हकों के लिए एकजुट होने का आह्वान किया। बिगुल मजदूर दस्ता के विराट ने मजदूरों को सम्बोधित करते हुए मई दिवस के इतिहास से मजदूरों को परिचित करवाया। उन्होने कहा कि शिकागो के मजदूर आन्दोलन को तो खून के दलदल में डुबो दिया गया था पर उसके बाद दुनियाभर के मजदूरों ने संघर्ष करके आठ घण्टे के कार्यदिवस का अधिकार हासिल किया। ऐसे में दुनियाभर के मजदूरों के लिए यही असली त्यौहार है।

नौजवान भारत सभा के सत्यनारायण ने कहा कि आज भारत में 93 फीसदी मजदूर यानि लगभग 56 करोड़ असंगठित हैं, ठेका दिहाड़ी और काण्ट्रेक्ट पर काम कर रहे हैं। उनको कोई भी सामाजिक सुरक्षा हासिल नहीं है, ज्यादातर जगहों पर आठ घण्टे से ज़्यादा काम करवाया जाता है व न्यूनतम मजदूरी तक नहीं दी जाती। ऐसे में आज उनको संगठित होकर अपने हक हासिल करने होंगे। मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद जिस तेज गति से श्रम कानूनों को मालिकों के पक्ष में बदला जा रहा है, मालिकों को मजदूरों को काम से निकालने, पर्यावरण की तबाही करने आदि की कानूनी मंजूरी दी गयी है, उससे आगे आने वाले समय में भारत की असंगठित मजदूर आबादी के हालात बद से बदतर होंगे। इसलिए अपने हालात बदलने के लिए आज हमें मई दिवस के शहीदों को स्मरण करते हुए उनके रास्ते पर चलने की जरूरत है।

कार्यक्रम के दौरान क्रांतिकारी गीत प्रस्तुत किये और एक नुक्कड़ नाटक 'मई दिवस' खेला गया। साथ ही पूरे इलाक़े में हजारों पर्चों का वितरण किया गया।

नरवाना, हरियाणा में निर्माण मज़दूर यूनियन द्वारा मई दिवस का कार्यक्रम

129वें अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के अवसर पर नरवाना में निर्माण मज़दूर यूनियन ने बिगुल मज़दूर दस्ता और नौजवान भारत सभा के सहयोग से मज़दूर अधिकार रैली, जनसभा और फ़िल्म शो का आयोजन किया। मज़दूर अधिकार रैली नरवाना के विश्वकर्मा चौक से भगतसिंह चौक तक निकाली गयी। रैली में मई दिवस के शहीदों को याद करते हुए नारे लगाये गये। रैली का अन्त भगतसिंह चौक पर हुआ जो शहर का लेबर चौक भी है। वहीं मज़दूरों की जनसभा आयोजित की गयी। सभा को सम्बोधित करते हुए बिगुल मज़दूर दस्ता के रमेश ने बताया कि मई दिवस मज़दूरों का सबसे बड़ा उत्सव है जो पूरी दुनिया के मज़दूर एक साथ मानते हैं। यही वह दिन है जिस दिन अमेरिका के शिकागो शहर के मज़दूरों ने 'आठ घण्टे के काम के दिन' की माँग को लेकर आवाज़ उठायी थी। इस लम्बे संघर्ष में चार मज़दूर नेता अल्बर्ट पार्सन्स, स्पाइस, फ़िशर, एंजिल ने अपनी कुबार्नी भी दी। जिनकी कुबार्नी व्यर्थ नहीं गयी और पूरी दुनिया के पूँजीपतियों को आठ घण्टे का कार्यदिवस लागू करना पड़ा। लेकिन आज फिर पूरी दुनिया में पूँजीपतियों का राज कायम है। कागज़ों पर दर्ज मज़दूरों के श्रम-क़ानून छीने जा रहे हैं, इसलिए हमें मई दिवस के शहीदों से प्रेरणा लेकर अन्याय-शोषण के ख़िलाफ़ एकजुट होना होगा। निर्माण मज़दूर यूनियन के इन्द्र ने लेबर चौक पर खड़े होने वाले निर्माण मज़दूरों की दिक़्क़तों पर बात रखी। साथी इन्द्र ने बताया कि मज़दूरों के बिखराव के कारण आये दिन मज़दूरों के पैसे मार लिये जाते हैं या 10-12 घण्टे काम लेकर दिहाड़ी सिर्फ़ आठ घण्टे की दी जाती है। वहीं लेबर चौक पर खड़े मज़दूरों के लिए न तो किसी शेड की व्यवस्था है, न ही पानी की। पिछले साल भी निर्माण मज़दूर यूनियन ने संघर्ष के बूते ही मालिकों को झुकाया था, इसलिए हमें अपनी यूनियन मज़बूत बनाने के लिए इसका सक्रिय सदस्य बनना होगा। कोई एक-दो मज़दूरों से यूनियन नहीं बनती, यूनियन का मतलब ही है एकजुटता। और व्यापक एकजुटता के दम पर ही हम अपने हक़-हक़ूक की लड़ाई लड़ सकते हैं। जनसभा का अन्त मज़दूर के संघर्ष के गीत 'मालिकों से लड़ने को एक हो जा भैया' से किया गया।

शाम को इन्दरा कॉलोनी में मई दिवस के इतिहास पर बिगुल मज़दूर दस्ता द्वारा बनायी गयी फ़िल्म 'लड़ाई अभी जारी है!' का आयोजन किया गया। फ़िल्म शो में भी काफ़ी कॉलोनीवासी उपस्थित थे। इस कड़ी में 3 मई को कलायत में भी इसी फ़िल्म का प्रदर्शन और मण्डी में पर्चा वितरण किया गया। **– बिगुल संवाददाता**

श्रम सुधारों के नाम पर मोदी सरकार का मज़दूरों पर हमला तेज़

पेज 1 से आगे)

गवाह होगा। यूँ तो, अधिकांश काम ठेका और विभिन्न श्रेणी के मज़दूरों से करवाने वाले न केवल छोटे-मझोले, बल्कि बड़े कारख़ाने भी इन दिनों श्रम क़ानूनों का या तो एकदम पालन नहीं करते या बस नाममात्र को करते हैं। श्रम कार्यालय या श्रम इंस्पेक्टरों की भूमिका इन दिनों दलाल से अधिक कुछ भी नहीं रह गयी है। अब इस स्थिति को क़ानूनी जामा पहनाकर मालिकों को एकदम खुला हाथ दिया जा रहा है। ग़ौरतलब है कि लेबर इंस्पेक्टर अब 'इंस्पेक्टर' नहीं बल्कि 'फ़ेसिलिटेटर' कहलायेंगे, यानी उनका काम श्रम क़ानूनों के अनुपालन का निरीक्षण करना नहीं, बल्कि मालिकों को अनुकूल परिस्थितियाँ 'फ़ेसिलिटेट' कराना (सुगम बनाना) होगा।

तीसरा विधेयक "इम्प्लाइज़ प्रॉविडेण्ट फ़ण्ड्स एण्ड मिसलेनियस प्रॉविजंस एक्ट, 1952" में व्यापक संशोधन प्रस्तावित करता है। इस विधेयक के अनुसार सभी कामगारों को अब इपीएफ़ (इम्प्लाइज़ 'प्रॉविडेण्ट' फ़ण्ड) और एनपीएस (न्यू पेंशन स्कीम) में से एक विकल्प चुनना होगा। दूसरा संशोधन यह है कि पगार की परिभाषा में अब बेसिक तनख़्वाह के साथ सभी भत्ते भी जुड़े होंगे। ज़ाहिर है इससे पीएफ़ में मज़दूरों का अंशदान बढ़ जायेगा। दूसरा प्रावधान यह किया गया है कि दस या उससे अधिक मज़दूर वाले सभी प्रतिष्ठान अब इपीएफ़ओ के दायरे में आयेंगे (पहले 20 या 20 से अधिक मज़दूर वाले प्रतिष्ठान ही आते थे)। ऊपरी तौर पर देखने में मालूम पड़ता है कि सरकार ज़्यादा से ज़्यादा मज़दूरों के भविष्य को आर्थिक तौर पर सुरक्षित करना चाहती है और पहले से ज़्यादा सुरक्षित करना चाहती है। लेकिन सच्चाई कुछ और है। दरअसल मज़दूर संगठनों के तमाम विरोध के बावजूद सरकार ने यह निर्णय पहले ही ले लिया है कि वह मज़दूरों के पीएफ़ संचय का 5 से लेकर 15 प्रतिशत तक 'स्पेक्युलेटिव शेयर मार्केट' में निवेश करेगी। निवेश की जाने वाली इस रक़म को ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाने के लिए मज़दूरों के पगार से पीएफ़ कटौती की रक़म बढ़ाने और इस दायरे में ज़्यादा से ज़्यादा मज़दूरों को लाने का निर्णय लिया गया है। इसके लिए कारख़ानेदारों के अतिरिक्त वित्त बाज़ार के मगरमच्छ भी लम्बे समय से सरकार पर दबाव बनाये हुए थे। सरकार का यह निर्णय, देश में मज़दूरों की अतिसीमित संख्या के लिए जो भी मरियल-विकलांग सामाजिक सुरक्षा स्कीम थी, उसके ताबूत में कील ठोकने की शुरुआत है। ईपीएफ़ के बदले में 'नेशनल पेंशन स्कीम' का जो विकल्प दिया जा रहा है, वह मात्र एक सामान्य बचत स्कीम है। ईपीएफ़ से सब्सक्राइबर के परिवार को लाभ मिलते थे, वह एनपीएस से नहीं मिलेगा। तुर्रा यह कि कुछ और संशोधनों के ज़रिये, छोटे कारख़ानों की मदद करने के नाम पर सरकार अब यह प्रावधान करने जा रही है कि 10 से 40 मज़दूरों वाले कारख़ानों के मज़दूरों को ईपीएफ़ से पहले के मुकाबले अब कम लाभ मिला करेगा। 75 प्रतिशत औद्योगिक मज़दूर ऐसे ही कारख़ानों में काम करते हैं।

सबसे बड़ा सच तो यह है कि छोटे-छोटे प्लाण्टों से लेकर घरेलू वर्कशॉपों तक ठेका, उपठेका और पीसरेट पर उत्पादन के काम को इस तरह बाँट दिया गया है कि उनमें काम करने वाले अधिकांश मज़दूरों का कोई रेकार्ड नहीं रखा जाता। ठेका, कैजुअल या अप्रेण्टिस मज़दूर को मिलने वाले क़ानूनी हक़ भी उन्हें हासिल नहीं होते। व्यवहारत: वे दिहाड़ी मज़दूर होते हैं जो सरकार और श्रम विभाग के लिए अदृश्य होते हैं। नये श्रम सुधारों द्वारा श्रम विभागों को एकदम निष्प्रभावी बनाकर इस किस्म के अनौपचारिकीकरण को अब ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ावा दिया जा रहा है ताकि विदेशी कम्पनियाँ और देश के छोटे-बड़े सभी पूँजीपति खुले हाथों से और मनमाने ढंग से अतिलाभ निचोड़ सकें।

मोदी द्वारा 'मेक इन इण्डिया' को रफ़्तार देने के लिए प्रस्तावित श्रम सुधारों की यह वास्तव में महज़ शुरुआत भर है। यह तो महज़ ट्रेलर है, पूरी पिक्चर अगले दो-तीन वर्षों में सामने आ जायेगी। बुर्जुआ और संसदमार्गी वामपन्थी दलों से जुड़ी यूनियनें मज़दूरों के अतिसीमित आर्थिक हितों की हिफ़ाज़त के लिए भी सड़क पर उतरने की हिम्मत और ताक़त दुअन्नी-चवन्नी की सौदेबाज़ी करते-करते खो चुकी है। वैसे भी देश की कुल मज़दूर आबादी में 90 फ़ीसदी से अधिक जो असंगठित मज़दूर हैं, उनमें इनकी मौजूदगी बस दिखावे भर की ही है। अब सफ़ेद कॉलर वाले मज़दूरों, कुलीन मज़दूरों और सर्विस सेक्टर के मध्यवर्गीय कर्मचारियों के बीच ही इन यूनियनों का वास्तविक आधार बचा हुआ है और सच्चाई यह है कि नवउदारवाद की मार जब समाज के इस संस्तर पर भी पड़ रही है तो ये यूनियनें इनकी माँगों को लेकर भी प्रभावी विरोध दर्ज करा पाने में अक्षम होती जा रही है। बहरहाल, रास्ता अब एक ही बचा है। गाँवों और शहरों की व्यापक मेहनतकश आबादी को सघन राजनीतिक कार्रवाइयों के ज़रिये, जीने के अधिकार सहित सभी जनवादी अधिकारों के लिए संघर्ष करने के उद्देश्य से, उनके विशिष्ट पेशों की चौहद्दियों का अतिक्रमण करके, इलाक़ाई पैमाने पर संगठित करना होगा। दूसरे, अलग-अलग सेक्टरों की ऐसी पेशागत यूनियनें संगठित करनी होंगी, जिसके अन्तर्गत ठेका मज़दूर और सभी श्रेणी के अनियमित मज़दूर मुख्य ताक़त के तौर पर शामिल हों। पुराने ट्रेड यूनियन आन्दोलन के क्रान्तिकारी नवोन्मेष की सम्भावनाएँ अब अत्यधिक क्षीण हो चुकी हैं। अब एक नयी क्रान्तिकारी शुरुआत पर ही सारी आशाएँ टिकी हैं, चाहे इसका रास्ता जितना भी लम्बा और कठिन क्यों न हो।

नवउदारवाद के दौर ने स्वयं ऐसी वस्तुगत स्थितियाँ पैदा कर दी हैं कि मज़दूर वर्ग यदि अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए नहीं लड़ेगा तो सीमित आर्थिक माँगों को भी लेकर नहीं लड़ पायेगा। मज़दूर क्रान्तियों की पराजय के बाद मज़दूर आबादी के अराजनीतिकीकरण की जो प्रवृति हावी हुई है, उसका प्रतिरोध करते हुए ऐसे हालात बनाने के लिए अब माकूल और मुफ़ीद माहौल तैयार हुआ है कि मज़दूर वर्ग एक बार फिर नये सिरे से क्रान्तिकारी राजनीतिक चेतना के नये युग में प्रवेश करे। ज़ाहिर है, यह अपने आप नहीं होगा। इसके लिए सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान और आज के नये हालात (यानी नवउदारवाद के दौर में पूँजीवाद की नयी कार्यप्रणाली) का गहन अध्ययन और जाँच-पड़ताल करके सर्वहारा क्रान्तिकारियों के नये दस्तों को मैदान में उतरना होगा। आगे का रास्ता निश्चय ही लम्बा और कठिन है, लेकिन विश्व पूँजीवाद का मौजूदा असमाधेय ढाँचागत संकट बता रहा है कि पूँजी और श्रम के बीच संघर्ष का अगला चक्र श्रम की शक्तियों की निर्णायक विजय की परिणति तक पहुँचेगा। ऐसी स्थिति में लम्बा और कठिन रास्ता होना लाजिमी है, लेकिन हज़ार मील लम्बे सफ़र की शुरुआत भी तो एक छोटे से क़दम से ही होती है।

हाशिमपुरा से तेलंगाना और चित्तूर तक भारतीय पूँजीवादी जनवाद के ख़ूनी जबड़ों की दास्तान

अधिक से अधिक लकड़ी हथियाने के लिए इन गिरोहों में आपसी टकराव भी चलता रहता है। बहुत सम्भावना यही है कि इन कारोबारियों के एक धड़े ने अपने राजनैतिक प्रभाव-रसूख के दम पर दूसरे धड़े के कारोबार को ठप्प करने, उनमें दहशत फैलाने के लिए यह हत्याकाण्ड करवाया है। जितने योजनाबद्ध ढंग के साथ और जितने बड़े स्तर पर यह हत्याकाण्ड हुआ है उससे यह साफ़ है कि इसमें स्थानीय पुलिस ही शामिल नहीं है, बल्कि इसको राज्य सरकार से भी शह हासिल थी। इस तरह दो पूँजीपति गिरोहों के आपसी टकराव में 20 निर्दोष मज़दूरों की हत्या की गयी जो लकड़ी काटने का काम अपने गुज़ारे के लिए दिहाड़ी पर करते थे।

आन्ध्र प्रदेश में यह बात भी ध्यान देने वाली है कि यहाँ पुलिस ने बड़े स्तर पर माओवादियों और आदिवासियों का नरसंहार किया है, उन पर दमन किया है, अनेकों की मारपीट की, लोग ज़बरन उजाड़े और औरतों के साथ बलात्कार किये गये। इस सबको राजनैतिक सरपरस्ती हासिल थी, बल्कि यह सब राजसत्ता के इशारों पर ही हुआ है। ऐसे माहौल के कारण भी यहाँ पुलिस बेख़ौफ़ है, सरकारी ज़बर शिखरों पर है, दिन-दिहाड़े सरकारी दहशतगर्दी का नंगा नाच खेला जाता है। इसलिए भारतीय राजसत्ता के लिए यहाँ 20 मज़दूरों को सरेआम कत्ल करना भी कोई बड़ी बात नहीं है। यहाँ भारत का पूँजीवादी लोकतन्त्र स्पष्ट रूप में अपने असली रंग में दिखायी देता है।

वर्गों में बाँटे पूँजीवादी समाज में जनवाद कोई निरपेक्ष चीज़ नहीं होता, बल्कि इसका भी एक वर्गीय चरित्र होता है। जनवाद एक वर्ग के द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण और दमन करने का ही एक यन्त्र होता है, यह डण्डे का ही एक रूप होता है। पूँजीवादी जनवाद वास्तव में जायदाद के मालिक वर्गों (पूँजीपति वर्ग) के लिए ही जनवाद होता है और बहु-संख्या मेहनतकश, मज़दूर आबादी के लिए यह तानाशाही, डण्डा ही होती है जिसको "लोकतन्त्र" की थोथी लफ़्फ़ाज़ी के नीचे छिपाया जाता है। इस जनवाद की असलियत को नंगा करती अनेकों घटनाएँ रोज़मर्रा के जीवन में ही देखी जा सकती हैं। समाज में क़ुदरती ख़ज़ानों और जायदाद के साधनों का बँटवारा एक तरफ़ कोई काम ना करने वाले और ऐयाश धनाढ्यों के झुण्ड और दूसरी तरफ़ दिन भर मेहनत करते करोड़ों ग़रीब लोग - पूरा भारतीय संविधान,

इसकी चयन प्रणाली, इसका राजनैतिक ढाँचा और हर साल पेश होते बजट - शिक्षा, सेहत व यातायात सहूलतों में दोहरी प्रणाली या दोहरी क़ानूनी और न्याय प्रणाली - रोटी, कपड़ा और मकान जैसी सहूलतें से लेकर मनोरंजन के साधनों में विभाजन आदि सब यह साबित करते हैं कि जनवाद आर्थिक (वर्गीय) हैसियत के साथ जुड़ा हुआ है, कि जिसकी वर्गीय हैसियत जितनी ऊँची है उसको उतने ही अधिक मौक़े व सहूलतें हैं और जिसकी वर्गीय हैसियत जितनी नीची है उसके लिए आज़ादी और जनवाद उतना ही सिकुड़ा हुआ है, बल्कि वह सीधे-सीधे तानाशाही के नीचे जीने के लिए मजबूर हैं। समाज के इस वर्गीय विभाजन के कारण देश के करोड़ों लोग ग़रीबी, बदहाली के गड्ढे में धकेल दिये गये हैं। आर्थिक साधन न होने के कारण भारत में रोज़ ही हज़ारों लोग भुखमरी, साधारण बीमारियों का इलाज न मिलने और अधिक गर्मी या ठण्ड पड़ने के कारण मारे जाते हैं। यह भी इस पूँजीवादी जनवाद की तरफ़ से किये जाते ठण्डे कत्ल ही हैं - यह है मौजूदा जनवाद की असली सच्चाई जिसका गुणगान पूँजीपतियों के टुकड़बाज़ों से लेकर भ्रमग्रस्त बुद्धिजीवी आम ही अख़बारों, टीवी चैनलों, किताबों, सेमीनारों और आम बातचीत में करते रहते हैं। हाशिमपुरे के हत्याकाण्ड से लेकर अदालती फ़ैसले ने और चित्तूर और तेलंगाना के कत्लेआमों ने एक बार फिर इस लोकतन्त्र के ख़ूनी जबड़ों की असली दास्तान पेश की है, मसला बस सत्य पहचानने और उसको मानने का है।

इसलिए जहाँ आज तत्काल तौर पर यह ज़रूरत है कि ऐसे कत्लेआमों से लेकर रोजमर्रा के जीवन में होती बेइंसाफ़ियों के ख़िलाफ़ डटा जाये, लोकतन्त्र के नाम पर होती तानाशाही को लोगों की एकता के दम पर रोकने की कोशिश की जाये, वहाँ यह असली ज़रूरत भी ध्यान में रखी जाये कि मौजूदा पूँजीवादी जनवाद का ही अन्त किया जाना चाहिए और इसकी जगह मज़दूर वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित क्यिा जाना चाहिए। लाजिमी ही वर्गीय समाज में इस अधिनायकत्व का भी दोहरा चरित्र होगा। यह अल्प-संख्या लुटेरे जायदाद मालिक वर्गों के लिए अधिनायकत्व (तानाशाही) होगा और बहु-संख्या मज़दूर, मेहनतकश आबादी के लिए जनवाद। ऐसे समाज में ही बुनियादी ज़रूरतों से लेकर आधुनिक सुख-सहूलतों के साधन, कला, साहित्य, मनोरंजन के साधनों तक सब लोगों की बराबर पहुँच हो सकती है और ऐसे समाज में ही चित्तूर, तेलंगाना, हाशिमपुरा, कश्मीर जैसे कत्लेआमों का सिलसिला रुक सकता है।

(पंजाबी पत्रिका 'ललकार' से साभार)

भूकम्प से मची तबाही से पूँजीवाद पल्ला नहीं झाड़ सकता

पेज 1 से आगे)

वहाँ के राजनीतिक धड़े पिछले 7 साल से सत्ता में भागीदारी को लेकर खींचतान में लगे हैं। माओवादी अगर क्रान्ति का रास्ता छोड़ सत्ता के गलियारों में शामिल न हुए होते तो जनाधार के चलते इस त्रासदी के समय राहत कार्यों में वे महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते थे। जो कि माओवादियों के जनाधार को और व्यापक बनाते हुए क्रान्ति को आगे बढ़ाने में भी मदद करता।

कुल-मिलाकर, 240 साल का निरंकुश राजतन्त्र और पिछले 7 वर्षों से छायी हुई राजनीतिक अस्थिरता ने नेपाल में सार्वजनिक सुविधाओं के विकास को बाधित किया है। यही कारण है कि आज जब भूकम्प के दौरान हुई तबाही में ज़ख्मी हुए लोगों को चिकित्सीय मदद की बेहद ज़रूरत है तब नेपाल में 1,00,000 लोगों के पीछे महज़ 21 डॉक्टर हैं। यही वजह है कि राहत कार्यों के लिए नेपाल को दूसरे देशों की तरफ़ ताकना पड़ रहा है।

तबाही को बढ़ाने में पूँजीवादी व्यवस्था की भूमिका

वैज्ञानिकों के बड़े हिस्से में यह आम सहमति है कि भूकम्प एक प्राकृतिक परिघटना है। वे भूकम्प के आने या इसकी तीव्रता बढ़ाने में "इंसानी गतिविधियों" (पूँजीवादी विकास) की भूमिका को नकारते हैं। लेकिन वैज्ञानिकों का एक हिस्सा ऐसा भी है जो भूकम्प पर "इंसानी गतिविधियों" के प्रभाव को मानता है। इन वैज्ञानिकों के अनुसार ऐसे सभी इलाक़ों में, जहाँ पर भूकम्प का ख़तरा सबसे अधिक है, पृथ्वी पर दबाव डालने वाली या उसकी

आन्तरिक संरचना से छेड़छाड़ करने वाली गतिविधियों की भूकम्प लाने या उसकी तीव्रता बढ़ाने में प्रभावी भूमिका हो सकती है। उदाहरण के तौर पर 2008 में चीन के सिचुआन प्रान्त में आये भूकम्प, जिसमें 85,000 लोग मारे गये थे, में जिपिंगपू बाँध को दोषी माना जा रहा है। लेकिन इस बात पर वैज्ञानिकों में किसी तरह का विवाद नहीं है कि भूकम्प द्वारा मचायी गयी तबाही को बढ़ाने में "इंसानी गतिविधियों" की बहुत बड़ी भूमिका है।

पूँजीवादी व्यवस्था, जिसका एकमात्र मक़सद मुनाफ़ा कमाना होता है, असमान विकास को बढ़ावा देती है। एक तरफ़ जहाँ मेहनतकशों द्वारा पैदा की गयी धन-सम्पदा मुट्ठी-भर निठल्ले-काहिल लोगों के हाथों में इकट्ठी होती जाती है, वहीं दूसरी तरफ़ बहुसंख्यक जनता ग़रीबी में धकेली जाती रहती है। समस्त सुविधाएँ जैसे अच्छे घर, स्कूल, अस्पताल आदि सिर्फ़ अमीरों के लिए होती हैं। पूँजीवादी विकास का ही नतीजा है कि कुछ ही शहरों में नौकरी मिलने की सम्भावना के चलते नौकरी की तलाश में ज़्यादा से ज़्यादा आबादी अपने इलाक़ों से पलायन करके इन शहरों में इकट्ठी होती जाती है। नौकरी की तलाश में अपने घरों से पलायन करके आये लोगों के आवास की स्थितियाँ बेहद ख़राब होती हैं। जिन कोठरी-नुमा घरों में मेहनतकश आबादी को रहना पड़ता है, उन्हें बनाते समय किसी तरह के भूकम्प-निरोधक दिशानिर्देशों पर अमल नहीं किया जाता। यही वजह है कि भूकम्प या ऐसी ही किसी और आपदा के समय जान-माल का सबसे अधिक नुक़सान मेहनतकश आबादी का ही होता है। दूसरा, सभी बुनियादी सुविधाओं के कुछ ही शहरों तक सीमित रहने के चलते, ऐसी आपदाओं के समय देहात और दूर-दराज़ के लोगों के पास कोई आसरा नहीं होता, जिससे वे मदद की उम्मीद कर सकें। इसी असमान और अनियोजित विकास के कारण प्राकृतिक आपदाओं से होने वाली तबाही कई गुणा बढ़ जाती है।

प्राकृतिक आपदाओं की सम्भावना और उनसे होने वाली तबाही को बढ़ाने में जो दूसरा पहलू काम करता है, वह है पूँजीवाद द्वारा प्रकृति का अन्धाधुँध तरीक़े से किया जा रहा दोहन। पूँजीवाद जिस क़दर प्रकृति से छेड़छाड़ कर रहा है, इसके गम्भीर नतीजे आज हमारे सामने हैं। हर साल आने वाली बाढ़ों, भूस्खलनों आदि की संख्या पहले से कहीं ज़्यादा बढ़ी है। मुनाफ़े की हवस के चलते पूँजीपति प्राकृतिक सम्पदाओं को लूटने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं। बड़े पैमाने पर जल-जंगल-ज़मीन को उजाड़ा जा रहा है। नदियों के बहाव के साथ छेड़-छाड़ की जा रही है। उदाहरण के तौर पर चीन के 100 ऐसे बड़े बाँध हैं जो उसने ऐसे इलाक़ों में बनाये हैं जहाँ भूकम्प का ख़तरा सबसे अधिक है। नेपाल का ही उदाहरण लें तो जल विद्युत परियोजना के तहत त्रिशुली नदी पर चीन द्वारा जो बड़ा बाँध बनाया गया है, उसे भूकम्प से काफ़ी नुक़सान पहुँचा है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह महज़ संयोग था कि बाँध अभी शुरू नहीं हुआ था। लेकिन अगर उसमें पानी होता तो फुकुशिमा की तर्ज़ पर यहाँ भूकम्प के साथ-साथ सुनामी भी आती और हज़ारों नहीं बल्कि लाखों लोग मरते। जिस गति से भारत और चीन के पूँजीपतियों द्वारा अपने हितों के लिए नेपाल में जल विद्युत परियोजनाओं के तहत बड़े-बड़े बाँध बनाये जा रहे हैं, उसका नतीजा नेपाली जनता को बड़ी तबाही के रूप में झेलना पड़ेगा।

यह सही है कि प्राकृतिक आपदाओं से पूरी तरह निजात नहीं पाया जा सकता। यह मनुष्य और प्रकृति के बीच के संघर्ष का हिस्सा है। लेकिन मुनाफ़ा केन्द्रित व्यवस्था का ध्वंस करके और मेहनतकश का राज्य क़ायम करके समान और नियोजित विकास के ज़रिये प्राकृतिक आपदाओं की सम्भावना और इनसे होने वाली तबाही को काफ़ी हद तक कम किया जा सकता है। सही मायने में कहें तो आज पूँजीवाद के ख़ात्मे का प्रोजेक्ट मेहनत की लूट के ख़ात्मे के अलावा इस बात को भी निर्धारित करेगा कि पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व बना रहे।

– अखिल कुमार

मोदी सरकार के "ऑपरेशन मैत्री" की असलियत और नेपाल त्रासदी में पूँजीवादी मीडिया की घृणित भूमिका

भूकम्प के बाद जिस रफ़्तार से मोदी सरकार ने "ऑपरेशन मैत्री" के नाम पर नेपाल की बड़े स्तर पर मदद के लिए हाथ बढ़ाया, उसका भारतीय मीडिया द्वारा ख़ूब बख़ान किया जा रहा है। नेपाल त्रासदी के सन्दर्भ में मीडिया भारत को नेपाल के बड़े भाई की तरह पेश कर रहा है जो अपना दुख-दर्द भूलकर उसके "आँसू पोंछने" में कोई कसर नहीं छोड़ेगा। लेकिन असलियत यह है कि मोदी सरकार मीडिया को एक छवि-निर्माता के रूप में इस्तेमाल कर रही है। दरअसल, मोदी सरकार द्वारा की जा रही मदद में भारतीय पूँजीपति वर्ग के आर्थिक हित छिपे हुए हैं। नेपाल की सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों का बड़ा हिस्सा आज भी भारत के ऊपर निर्भर है। नेपाल में गैस और तेल की सप्लाई भारत के ज़रिये ही होती है। तेज़ प्रवाह वाली 6000 नदियों के स्रोत के तौर पर जल विद्युत परियोजनाओं के लिए नेपाल भारत के लिए बड़े महत्व का देश है। इन्हीं कारणों से नेपाल चीन के लिए भी महत्वपूर्ण देश है। चीन की महत्वाकांक्षी परियोजना न्यू सिल्क रोड का नेपाल अहम हिस्सा है। इसी अहमियत की वजह से पिछले कुछ समय से अलग-अलग स्तर पर नेपाल की "मदद" को लेकर भारत-चीन में

प्रतिस्पर्धा चल रही है। इस बार भी नेपाल की मदद के लिए भारत ने जितनी व्यग्रता दिखायी है उतनी ही चीन ने भी दिखायी है। दरअसल, दोनों देश नेपाल पर अपना प्रभाव बढ़ाना चाहते हैं। लेकिन कुछ वर्षों से भारत का प्रभाव नेपाल पर से कम हो गया है। वर्ष 2014 में चीन वहाँ का सबसे बड़ा विदेशी निवेशक बन चुका है। अभी पिछले महीने ही नेपाल सरकार ने चीन की एक निजी कम्पनी की 1.6 बिलियन डॉलर की जल विद्युत परियोजना को हरी झण्डी दी है। नेपाल की अहमियत को देखते हुए चीन के बढ़ते प्रभाव को लेकर भारतीय पूँजीपति वर्ग ख़ासा चिन्तित है। 2014 में मोदी की नेपाल यात्रा भी इसी चिन्ता का नतीजा थी। इस यात्रा को भी भारतीय मीडिया ने जमकर उछाला था। यात्रा के दौरान भारत की महत्वाकांक्षी जल विद्युत, परिवहन एवं संचार परियोजनाओं को लेकर भारत और नेपाल में कई समझौते हुए थे। इसी यात्रा के दौरान लम्बे समय से लटकी हुई 5600 मेगावाट क्षमता वाली पंचेश्वर बहुउद्देशीय परियोजना को नेपाल सरकार ने हरी झण्डी दी थी। इस बार भी यही वजह है कि मोदी सरकार ने नेपाल की मदद को लेकर इतनी दिलचस्पी दिखायी है। हालाँकि मीडिया मोदी सरकार के नेतृत्व में भारत द्वारा किये जा रहे राहत कार्यों को मानवतावादी रंगत देने की कोशिश कर रहा है, असलियत में की जा रही मदद के पीछे भारतीय पूँजीपति वर्ग के आर्थिक हित काम कर रहे हैं।

जिस मीडिया का उपयोग मोदी सरकार नेपाल के साथ-साथ पूरी दुनिया के आगे अपनी अच्छी छवि बनाने में कर रही थी, उसी मीडिया की वजह से नेपाल के लोगों द्वारा सोशल मीडिया पर उसकी ख़ूब छीछालेदर हो रही है। भूकम्प से पीड़ित लोगों के दुख-दर्द से मुँह फेरकर जिस तरीक़े से मोदी सरकार द्वारा की जा रही मदद को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जा रहा है, उसका गुणगान किया जा रहा है, उसे लेकर नेपाल के लोगों में ज़बरदस्त गुस्सा है। उनका आरोप है कि नेपाल त्रासदी के पीड़ितों को मदद पहुँचाने की बजाय भारतीय सेना अपने लोगों को निकालने में लगी रही। लोगों के अनुसार भारतीय सेना के हर हैलीकॉप्टर में पत्रकार बैठे मिलते थे जबकि होना तो यह चाहिए था कि उनकी जगह चिकित्साकर्मियों की टीमें बैठतीं। भारतीय सेना और मीडिया की भूमिका पर सवाल उठने का यह कोई पहला मामला नहीं है। अगर आपको याद हो, पिछले साल कश्मीर त्रासदी में बचाव कार्यों के समय भी भारतीय सेना और मीडिया पर बिल्कुल ऐसे ही सवाल उठे थे। उस समय भी यही आरोप लग रहा था कि भारतीय सेना अपने लोगों को निकालने में लगी हुई है जबकि मीडिया भारतीय सेना की तारीफ़ों के पुल बाँध रहा है। सोचने की बात है कि बचाव कार्यों के समय जो मीडिया भारतीय सेना की जेब में बैठा रहता है, वही मीडिया दमनकारी क़ानून अफ़स्पा के तहत भारतीय सेना द्वारा कश्मीर, असम, मणिपुर आदि राज्यों में जो कहर ढाया जा रहा है, उससे बिल्कुल आँखें मूँद लेता है।

दूसरा, नेपाल त्रासदी के सन्दर्भ में मीडियाकर्मियों ने जिस क़दर संवेदनहीनता का परिचय दिया है, उसने पीड़ित नेपाली जनता के जले पर नमक छिड़कने का काम किया है। ज़रा मीडियाकर्मियों के सवालों को देखिये। एक महिला जिसका बेटा मलबे के नीचे दबकर मर गया था उससे मीडियाकर्मी पूछता है कि "आपको कैसा लग रहा है?" पूरी नेपाल त्रासदी को मीडिया ने सनसनीखेज़ धारावाहिक की तरह पेश किया है। ज़ाहिर है कि पूँजीवादी मीडिया, जिसका मक़सद ख़बरों को साबुन-तेल की तरह बेचकर मुनाफ़ा कमाना हो, उससे यही उम्मीद की जा सकती है।

– अखिल

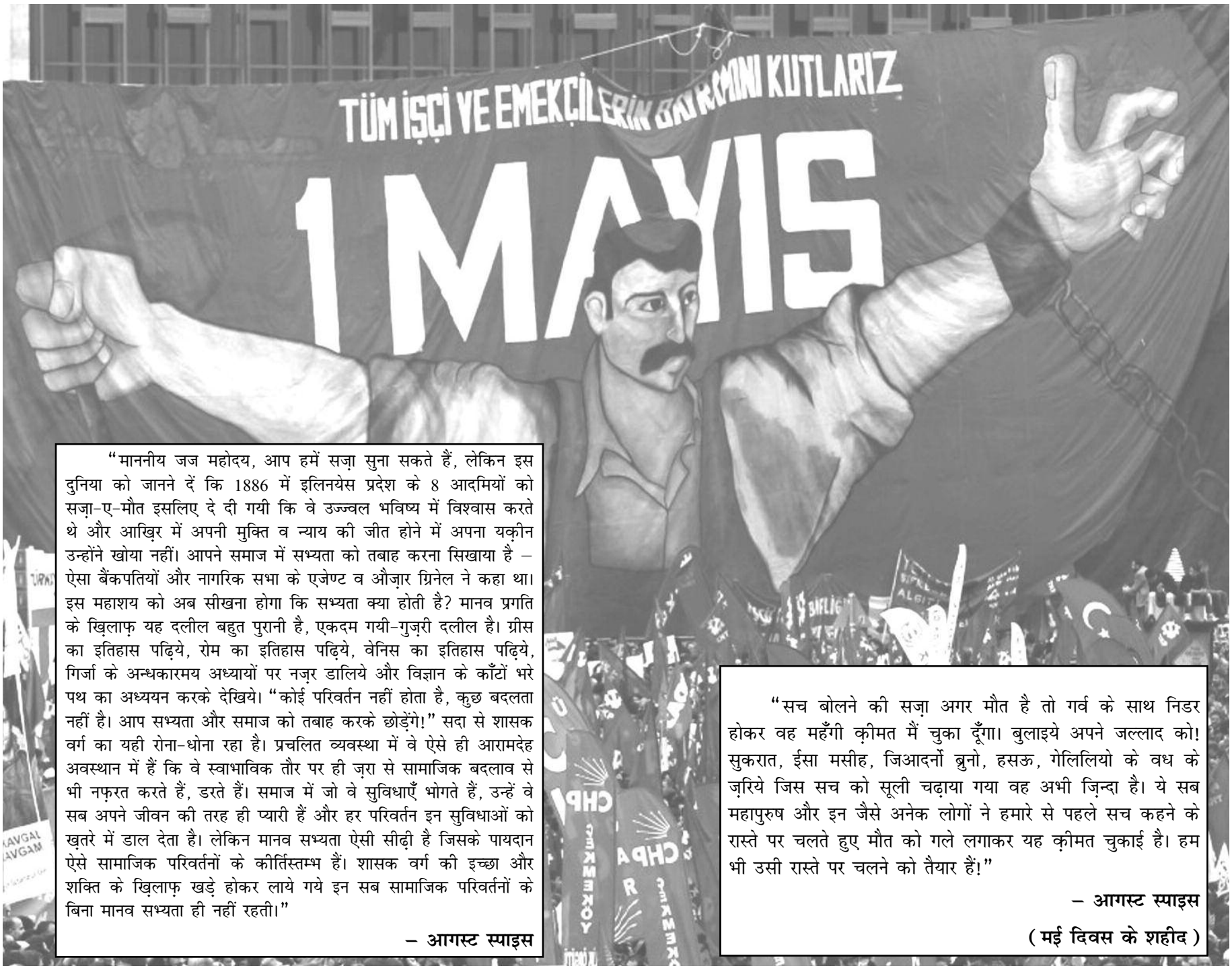

"माननीय जज महोदय, आप हमें सज़ा सुना सकते हैं, लेकिन इस दुनिया को जानने दें कि 1886 में इलिनयेस प्रदेश के 8 आदमियों को सज़ा-ए-मौत इसलिए दे दी गयी कि वे उज्ज्वल भविष्य में विश्वास करते थे और आख़िर में अपनी मुक्ति व न्याय की जीत होने में अपना यक़ीन उन्होंने खोया नहीं। आपने समाज में सभ्यता को तबाह करना सिखाया है – ऐसा बैंकपतियों और नागरिक सभा के एजेण्ट व औज़ार ग्रिनेल ने कहा था। इस महाशय को अब सीखना होगा कि सभ्यता क्या होती है? मानव प्रगति के ख़िलाफ़ यह दलील बहुत पुरानी है, एकदम गयी-गुज़री दलील है। ग्रीस का इतिहास पढ़िये, रोम का इतिहास पढ़िये, वेनिस का इतिहास पढ़िये, गिर्जा के अन्धकारमय अध्यायों पर नज़र डालिये और विज्ञान के काँटों भरे पथ का अध्ययन करके देखिये। "कोई परिवर्तन नहीं होता है, कुछ बदलता नहीं है। आप सभ्यता और समाज को तबाह करके छोड़ेंगे!" सदा से शासक वर्ग का यही रोना-धोना रहा है। प्रचलित व्यवस्था में वे ऐसे ही आरामदेह अवस्थान में हैं कि वे स्वाभाविक तौर पर ही ज़रा से सामाजिक बदलाव से भी नफ़रत करते हैं, डरते हैं। समाज में जो वे सुविधाएँ भोगते हैं, उन्हें वे सब अपने जीवन की तरह ही प्यारी हैं और हर परिवर्तन इन सुविधाओं को ख़तरे में डाल देता है। लेकिन मानव सभ्यता ऐसी सीढ़ी है जिसके पायदान ऐसे सामाजिक परिवर्तनों के कीर्तिस्तम्भ हैं। शासक वर्ग की इच्छा और शक्ति के ख़िलाफ़ खड़े होकर लाये गये इन सब सामाजिक परिवर्तनों के बिना मानव सभ्यता ही नहीं रहती।"

– आगस्ट स्पाइस

"सच बोलने की सज़ा अगर मौत है तो गर्व के साथ निडर होकर वह महँगी क़ीमत मैं चुका दूँगा। बुलाइये अपने जल्लाद को! सुकरात, ईसा मसीह, जिआदर्नो ब्रुनो, हसऊ, गेलिलियो के वध के ज़रिये जिस सच को सूली चढ़ाया गया वह अभी ज़िन्दा है। ये सब महापुरुष और इन जैसे अनेक लोगों ने हमारे से पहले सच कहने के रास्ते पर चलते हुए मौत को गले लगाकर यह क़ीमत चुकाई है। हम भी उसी रास्ते पर चलने को तैयार हैं!"

– आगस्ट स्पाइस

(मई दिवस के शहीद)

उथल-पथल से गुज़रता दक्षिण अफ़्रीका का मज़दूर आन्दोलन

दक्षिण अफ़्रीका का मज़दूर आन्दोलन भीषण ठहराव और टूट-फूट के दौर से गुज़र रहा है। पिछले वर्ष नवम्बर में कोसाटू (दक्षिण अफ़्रीकी ट्रेड यूनियनों का महासंघ) से नुमसा (धातु कामगारों का राष्ट्रीय संघ) के निकाले जाने की घटना के बाद हाल में नुमसा द्वारा मई 2015 में संयुक्त मोर्चे के गठन और मज़दूरों की एक अलग समाजवादी पार्टी के निर्माण की कोशिशों की ख़बरें आ रही हैं।

पाठकों को बता दें कि दक्षिण अफ़्रीका के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष में और रंगभेद के विरुद्ध संघर्ष में दक्षिण अफ़्रीकी मज़दूरों के जुझारू संगठित प्रतिरोध का शानदार इतिहास रहा है। ख़ासतौर पर 1970 और 1980 के दशक में मज़दूर प्रतिरोध का व्यापक उभार हुआ। इस दौरान मज़दूरों ने बड़े पैमाने पर संगठन बनाये और छात्रों, युवाओं, बुद्धिजीवियों के साथ मिलकर राजनीतिक संघर्षों में बड़े पैमाने पर शिरकत की। 1980 के उत्तरार्द्ध में राजनीतिक संघर्षों का उफान इतना तेज़ था कि 1986 में आपातकाल की घोषणा कर दी गयी और विद्रोह के केन्द्रों में हज़ारों लोगों को क़त्ल कर दिया गया, जिनमें बहुत बड़ी संख्या मज़दूरों की थी। 1990 में साम्राज्यवादी शासकों को मजबूर होकर एएनसी (अफ़्रीकन नेशनल कांग्रेस) से समझौता करना पड़ा और इस तरह दक्षिण अफ़्रीकी बुर्जुआ जनतान्त्रिक गणराज्य अस्तित्व में आया। 1994 में पहली बार अश्वेत आबादी को मताधिकार हासिल हुआ और उसने आम चुनाव में नेल्सन मण्डेला को अपना पहला अश्वेत राष्ट्रपति चुना।

जनता को नये निज़ाम से बहुतेरी उम्मीदें थीं। 1990 में नेल्सन मण्डेला ने 1955 के फ़्रीडम चार्टर को लागू करने की बात कही। इस चार्टर के अनुसार खदानों और उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण एवं ज़मीनों का पुनर्वितरण होना था। लेकिन सत्ता सँभालने के बाद एएनसी ने इसे लागू करने से साफ़ इनकार कर दिया। यहाँ यह ध्यान में रखना होगा कि 1990 तक पूरी दुनिया की तस्वीर बदल चुकी थी, चीन और रूस में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना हो चुकी थी तथा निजीकरण व उदारीकरण की हवा ज़ोरों पर थी। दक्षिण अफ़्रीकी समाज के भीतर भी बहुतेरे बुनियादी परिवर्तन हो रहे थे। 1994 में वहाँ 18 लाख की एक छोटी सी आबादी वाला अश्वेत मध्यवर्ग अस्तित्व में आ चुका था जिसके हित पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के साथ नत्थी हो चुके थे। आज इस मध्यवर्ग की संख्या 60 लाख से भी अधिक है और इसमें अश्वेत पूँजीपतियों की संख्या भी अच्छी-ख़ासी है।

अगर इन आम हालातों के सन्दर्भ में देखा जाये तो अफ़्रीकी नेशनल कांग्रेस द्वारा अफ़्रीकी जनता को ठेंगा दिखाकर पूँजीपति वर्ग के पक्ष में नंगई के साथ खड़े होकर मज़दूर विरोधी नीतियों को लागू करने की मुहिम में कुछ भी हैरानी की बात नहीं है। मज़ेदार बात यह है कि दक्षिण अफ़्रीका की कम्युनिस्ट पार्टी (एसएसीपी) और वहाँ के सबसे बड़े मज़दूर संघ कोसाटू ने भी इन पूँजीपरस्त नीतियों को खुला समर्थन दिया।

दक्षिण अफ़्रीका के मज़दूरों को एएनसी, एसएसीपी और कोसाटू के गन्दे त्रिगुट द्वारा पूँजी की विनाशकारी सत्ता के समक्ष असहाय छोड़ दिया गया। जल्द ही इन पूँजीपरस्त नीतियों के परिणाम भी सामने आगे लगे। दक्षिण अफ़्रीका के अलग-अलग हिस्सों में बेरोज़गारी की दर 30 से 50 प्रतिशत तक बढ़ गयी। मज़दूरियों में भारी गिरावट आयी और मज़दूरों की काम की परिस्थितियाँ बहुत ख़राब हो गयीं। मज़दूरों के वेतनों में ज़बरदस्त कटौतियाँ की जाने लगीं। वॉक्सवैगन (कार बनाने वाली कम्पनी) जैसी कम्पनियों ने काम के दिन सप्ताह में 5 दिन से बढ़ाकर 6 दिन कर दिये। एक कार्यदिवस के दौरान मिलने वाले 2 इंटरवल तथा 2 चायब्रेक को घटाकर एक कर दिया गया। विरोध करने वाले मज़दूरों और उनके नेताओं को काम से निकाला जाने लगा। सन 2012 में मरिकाना प्लेटिनम खदान मज़दूरों के आन्दोलन को राज्यसत्ता के हाथों जघन्य हत्याकाण्ड का सामना करना पड़ा जिसमें 34 खदान मज़दूरों को पुलिस ने गोलियों से भून दिया। केवल 2009 से 2012 के बीच दक्षिण अफ़्रीकी जनता ने 3000 विरोध प्रदर्शन किये जिनमें लाखों लोगों ने हिस्सा लिया।

पूँजीपति वर्ग की इन कट्टर आर्थिक नीतियों और उन्हें लागू करने में दमनकारी तौर-तरीक़ों के विरुद्ध मज़दूरों की प्रतिक्रिया अवश्यम्भावी थी। कोसाटू के भीतर मौजूद नुमसा (धातु मज़दूरों की राष्ट्रीय यूनियन) इन नीतियों का विरोध कर रही थी। इस यूनियन ने सन 2013 के आम चुनावों से ठीक पहले स्वयं को एएनसी से अलग कर लिया था और मज़दूरों से अपील की थी कि वे एएनसी को वोट न दें। इसके परिणामस्वरूप नवम्बर 2014 में नुमसा को कोसाटू से अलग कर दिया गया। इस तानाशाही कार्रवाई के विरोध में 9 अन्य यूनियनों ने भी स्वयं को कोसाटू से अलग होने की घोषणा कर दी।

हाल ही में नुमसा द्वारा मई 2015 में संयुक्त मोर्चे के गठन का प्रस्ताव किया गया है और मज़दूरों की एक स्वतन्त्र समाजवादी पार्टी बनाने की घोषणा भी की गयी है। नुमसा के क्रान्तिकारी नेतृत्व की तमाम नेकनीयत के बावजूद यह सम्भव नहीं लगता कि वे अपने इरादों में सफल हो पायेंगे। इसके मूल में राजनीतिक कारक काम कर रहे हैं। नुमसा का नेतृत्व आज भी नवजनवादी क्रान्ति की बात करता है और दक्षिण अफ़्रीका में पूँजीवादी विकास और अन्तरराष्ट्रीय हालातों में हुए महत्वपूर्ण बदलावों को या तो नज़रअन्दाज़ करता है या फिर उन्हें चीन की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा 1963 में दी गयी नवजनवादी क्रान्ति की जनरल लाइन के अनुरूप काट-छाँट कर देखने का आदी है।

दक्षिण अफ़्रीका का मज़दूर आन्दोलन तभी आगे की ओर डग भर सकता है जब वह दक्षिण अफ़्रीका में हुए पूँजीवादी विकास और उसके तदनुरूप वर्ग शक्ति सन्तुलन में आये बदलावों का समुचित मूल्यांकन करे और चीनी क्रान्ति से सीखते हुए भी उसकी महानता की छत्रछाया से स्वयं को मुक्त करने का प्रयास करे।

– तपीश

जनता के एक सच्चे लेखक एदुआर्दो गालिआनो की स्मृति में

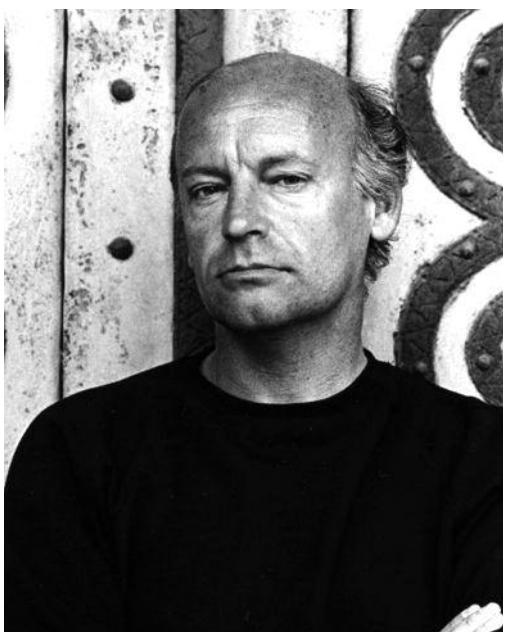

लातिन अमेरिका के लेखक एदुआर्दो गालिआनो दुनिया की मेहनतकश और संघर्षरत जनता के हक़ में उठी एक सशक्त आवाज़ के रूप में पूरी दुनिया में जाने जाते थे। उनकी किताब 'ओपन वेन्स ऑफ़ लैटिन अमेरिका' (लातिन अमेरिका की खुली नसें) साम्राज्यवादी लूट और तबाही का पर्दाफ़ाश करने वाली एक अद्‌भुत रचना है। पिछली 13 अप्रैल को यह आवाज़ हमेशा के लिए शान्त हो गयी। बिगुल के पाठकों के लिए हम यहाँ उनके लेखन के दो छोटे अंश प्रस्तुत कर रहे हैं। जल्द ही हम उनकी कुछ और ताक़तवर रचनाएँ यहाँ प्रस्तुत करेंगे। – सं.

दुनिया

कोलम्बिया के सागर तट पर, नेगुआ शहर का एक आदमी आसमान में ऊपर चढ़ जाने में कामयाब हो गया।

वापस लौटने पर उसने अपनी यात्र का वर्णन किया। उसने बताया कि ऊँचाई से कैसे उसने मानव जीवन का अवलोकन किया। उसने बताया कि हम छोटी-छोटी लपटों के सागर हैं।

उसने यह रहस्योदघाटन किया, "यह दुनिया लोगों का एक ढेर है, छोटी-छोटी लपटों का सागर है।"

हर व्यक्ति अपनी ख़ुद की रोशनी से चमकता है। कोई भी दो लपटें एकसमान नहीं होतीं। छोटी लपटें हैं और बड़ी लपटें हैं, हर रंग की लपटें हैं। कुछ लोगों की लपटें इतनी स्थिर हैं कि वे हवा में फड़फड़ाती तक नहीं, जबकि कुछ की उग्र लपटें हैं जो हवा को स्फुलिंगों से भर देती हैं। कुछ गावदी लपटें हैं जो न जलती हैं न रोशनी देती हैं, लेकिन कुछ दूसरी इतनी प्रचण्डता के साथ जिन्दगी से धधकती रहती हैं कि कोई बिना पलक झपकाये उनकी ओर देख नहीं सकता और अगर कोई उनके पास जाता है तो आग में चमकने लगता है।

साहित्य को इस ग़ुलाम समाज की आज़ादी की लड़ाई की उम्मीद बनना होगा

तो लोगों को झकझोर कर जगा देने और उन्हें आस-पास की सच्चाई से रू-ब-रू करने का काम कैसे किया जाए? जब दुनिया इस दौर के कठिन हालातों से रू-ब-रू है तो क्या साहित्य हमारे काम आ सकता है? संस्कृति का जो रूप सरकारें लेकर आती हैं वह तो सत्ता में बैठे चन्द लोगों के लिए ही है. यह सरकारी संस्कृति बर्बर व्यवस्था को 'विकास' और 'मानवता' का चेहरा देकर लोगों को गुमराह करती और व्यवस्था का गुलाम बना देती है. ऐसे में अपनी कलम से नई दुनिया का राह बनाने वाला लेखक 'सब ठीक है' जैसे झुठे दावों पर टिकी व्यवस्था से कैसे लड़े? ऐसे समय में जब हम अपनी अलग-अलग इच्छाओं और सपनों के साथ एक-दूसरे को सिर्फ फ़ायदे और नुकसान के नज़रिये से देख-समझ और परख पा रहे हैं तब सबको साथ लेकर चलने और दुनिया की तस्वीर बदलने का ख़्वाब संजोने वाले साहित्य की क्या भूमिका हो? हमारे आस-पास के हालात इतने बिगड़ चुके हैं कि लिखना और कुछ नहीं बल्कि एक के बाद दूसरी समस्याओं की बात करना और उनसे भिड़ना हो गया है. तब हमारा लिखना किन लोगों के ख़िलाफ़ और किनके लिये हो? लातिन अमेरिका में हम जैसे लेखकों की किस्मत और सफ़र बहुत हद तक बड़े सामाजिक बदलावों की ज़रूरत से सीधे-सीधे जुड़ा है. लिखना इस बदलाव के लिए लड़ना ही है क्योंकि यह तो तय है कि जब तक गरीबी, अशिक्षा और टी.वी तथा बाकी संचार माध्यमों के फैलते जाल पर बैठी सत्ता का राज कायम रहेगा तब तक हमारी सबसे जुड़ने और सबके साथ लड़ने की सभी कोशिशें बेकार ही रहने वाली हैं।

जब किसानों-मज़दूरों सहित आबादी के बड़े हिस्से की आज़ादी ख़त्म की जा रही है तब सिर्फ लेखकों के लिए कुछ रियायतों या सुविधाओं की बात से मैं सहमत नही हूँ। व्यवस्था में बड़े बदलावों से ही हमारी आवाज़ अभिजात महफिलों से निकल कर खुले और छिपे सभी प्रतिबन्धों को भेद कर उस जनता तक पहुँचेगी जिसे हमारी ज़रूरत है और जिसकी लड़ाई का हिस्सा हमें बनना है। अभी के दौर में तो साहित्य को इस गुलाम समाज की आज़ादी की लड़ाई की उम्मीद ही बनना है।

(अनुवाद : पी. कुमार मंगलम)

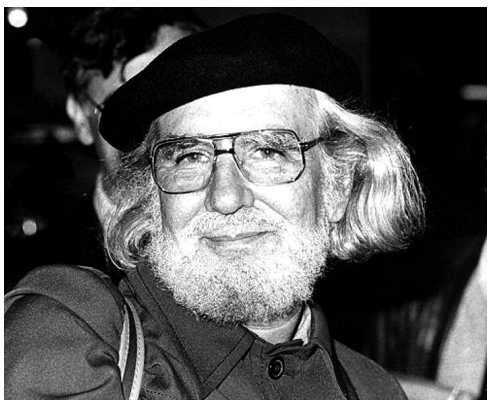

निकारागुआ के महाकवि एर्नेस्तो कार्देनाल की कविता

सेलफ़ोन

आप अपने सेलफ़ोन पर बात करते हैं
करते रहते हैं,
करते जाते हैं
और हँसते हैं अपने सेलफ़ोन पर
यह न जानते हुए कि वह कैसे बना था
और यह तो और भी नहीं कि वह कैसे
काम करता है
लेकिन इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है
परेशानी की बात यह कि
आप नहीं जानते
जैसे मैं भी नहीं जानता था
कि कांगो में मौत के शिकार होते हैं
बहुत से लोग
हज़ारों हज़ार
इस सेलफ़ोन की वजह से
वे मौत के मुँह में जाते हैं कांगो में
उसके पहाड़ों में कोल्टन होता है
(सोने और हीरे के अलावा)
जो काम आता है सेलफ़ोन के
कण्डेंसरों में
खनिजों पर क़ब्ज़ा करने के लिए
बहुराष्ट्रीय निगम
छेड़े रहते हैं एक अन्तहीन जंग
15 साल में 50 लाख मृतक
और वे नहीं चाहते कि यह बात
लोगों को पता चले
विशाल सम्पदा वाला देश
जिसकी आबादी त्रस्त है ग़रीबी से
दुनिया के 80 प्रतिशत कोल्टन के
भण्डार हैं कांगो में
कोल्टन वहाँ छिपा हुआ है
तीस हज़ार लाख वर्षों से
नोकिया, मोटरोला, कम्पाक, सोनी
ख़रीदते हैं कोल्टन
और पेंटागन भी, न्यूयॉर्क टाइम्स
कारपोरेशन भी,
और वे इसका पता नहीं चलने देना चाहते
वे नहीं चाहते कि युद्ध ख़त्म हो
ताकि कोल्टन को हथियाया जाना जारी
रह सके
7 से 10 साल तक के बच्चे निकालते हैं
कोल्टन
क्योंकि छोटे छेदों में आसानी से
समा जाते हैं
उनके छोटे शरीर
25 सेण्ट रोज़ाना की मजूरी पर
और झुण्ड के झुण्ड बच्चे मर जाते हैं
कोल्टन पाउडर के कारण
या चट्टानों पर चोट करने की वजह से
जो गिर पड़ती है उनके ऊपर

न्यूयॉर्क टाइम्स भी
नहीं चाहता कि यह बात पता चले
और इस तरह अज्ञात ही रहता है
बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का
यह संगठित अपराध
बाइबिल में पहचाना गया है
सत्य और न्याय
और प्रेम और सत्य
तब उस सत्य की अहमियत में
जो हमें मुक्त करेगा
शामिल है कोल्टन का सत्य भी
कोल्टन जो आपके सेलफ़ोन के भीतर है
जिस पर आप बात करते हैं करते जाते हैं
और हँसते हैं सेलफ़ोन पर बात करते हुए

अनुवाद : मंगलेश डबराल

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

मोदी सरकार का भूमि अधिग्रहण अध्यादेश और मुआवज़े का अर्थशास्त्र

कात्यायनी

असमय बारिश ने फ़सलों का भारी नुक़सान किया है। जो सरकार पूँजीपतियों को इतने बड़े पैमाने पर छूट और सब्सिडी देती रहती है और उनके द्वारा डकारे गये क़र्ज़े को मंसूख करती रहती है, उससे बर्बाद फ़सलों के मुआवज़े की माँग बिल्कुल वाजिब है। अब यह दीगर बात है कि जो भी दर तय करके मुआवज़े दिये जाते हैं उसमें छोटे-मझोले किसानों को तो सौ-दो सौ-हज़ार रुपये के चेक मिलते हैं, जो जले पर नमक छिड़कने के समान ही होता है। यह भी तय है कि इस प्रक्रिया में बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार की बन्दरबाँट भी होती है।

लेकिन हम थोड़ी देर के लिए आदर्श स्थिति की कल्पना करें। यदि बेहतर दर पर तय मुआवज़े भ्रष्टाचार-मुक्त ढंग से वितरित हों, तो भी पूँजीवादी व्यवस्था में यह वितरण अन्यायपूर्ण होता है और हर हाल में इसका लाभ उत्पादन के साधनों (ज़मीन, कृषि उपकरण आदि) के उन बड़े मालिकों को ही ज़्यादा मिलता है जो दूसरों की श्रमशक्ति निचोड़कर बाज़ार के लिए पैदा करते हैं। अर्थशास्त्र के आम नियमों के अमूर्त जटिल विस्तार में जाने के बजाय, आइये इस बात को सरल उदाहरणों से समझने की कोशिश की जाये।

मान लीजिये कोई सरकार बहुत वाजिब दर से मुआवज़े की रक़म तय करती है और उसे भ्रष्टाचार-मुक्त तरीक़े से किसानों में वितरित भी कर दिया जाता है। अब जिस धनी किसान/कुलक/फ़ार्मर के पास खेती का ज़्यादा क्षेत्रफल है, उसे ज़ाहिरा तौर पर ज़्यादा मुआवज़ा मिलेगा और छोटे-मझोले किसानों को उनकी खेती के क्षेत्रफल के हिसाब से मुआवज़े की कम रक़म मिलेगी। धनी किसानों के पास बीस-पच्चीस बीघे से लेकर कई-कई सौ बीघे तक की ज़मीन होती है। मुख्यत: वे बाज़ार में बेचने के लिए पैदा करते हैं और उनकी कुल उपज का बहुत छोटा हिस्सा - आठवाँ-दसवाँ या पचासवाँ तक हिस्सा ही उनके पारिवारिक इस्तेमाल के लिए होता है। प्रकृति की मार से खेती का भारी नुक़सान होने पर भी उनके खाने के लाले नहीं पड़ते। ज़्यादा से ज़्यादा यही होता है कि वे बाज़ार में बहुत कम अनाज बेच पाते हैं और उस सीजन में उनका मुनाफ़ा कम 'रियलाइज़' हो पाता है। हालाँकि बाज़ार में अनाज की आवक कम होने से क़ीमतें ऊपर हो जाती हैं तो इस कमी की भी काफ़ी हद तक भरपाई हो जाती है। यदि फ़सल पूरी तरह बर्बाद हो जाये तो भी धनी किसान कंगाल या दिवालिया नहीं होता। अपनी बचत से वह ख़रीदकर खा सकता है और उत्पादन के साधनों के एक छोटे से हिस्से को बेचकर या गिरवी रखकर अगली फ़सल की लागत का इन्तज़ाम कर सकता है। ऐसे धनी किसान को जब मुआवज़ा मिलता है तो वास्तव में समूची आम जनता से वसूली गयी रक़म से भरे सरकारी ख़ज़ाने से उस धनी किसान के मुनाफ़े में आने वाली कमी की भरपाई हो जाती है।

अब एक औसत मझोले किसान को लें जो अपने खेत में मज़दूर नहीं लगाता और पारिवारिक श्रम तथा अपने ही जैसे किसानों के आपसी सहकार के सहारे गुजारे की खेती करता है, यानी मुख्यत: पारिवारिक खपत के लिए पैदा करता है। जब खेती पर प्रकृति की मार पड़ती है तो ऐसे किसानों के खाने के लाले पड़ जाते हैं। बर्बाद फ़सल की पूरी क़ीमत भी यदि मुआवज़े के रूप में मिल जाये, तो भी उनकी परेशानी कम नहीं होती क्योंकि बाज़ार से जिस क़ीमत पर वह ख़रीदकर खाता है, वह किसान द्वारा बेची जाने वाली फ़सल की क़ीमत से (यानी जिस आधार पर मुआवज़े की रक़म तय होती है) हर हालत में ज्यादा होता है। तब ऐसे किसानों को भरण-पोषण के लिए मज़दूरी करनी पड़ती है। प्राय: ऐसे किसानों की खेती घाटे की खेती होती है क्योंकि आधुनिक खेती के 'इनपुट' के लिए उनके पास नगदी की कमी होती है और अक्सर उनके ऊपर महाजनों या बैंक का क़र्ज़ लदा होता है। ऐसे में मझोले किसान खेत बेचने या गिरवी रखने के लिए मजबूर हो जाते हैं। उनके उजड़कर सर्वहारा की पाँतों में शामिल होने की रफ़्तार तेज़ हो जाती है। आत्महत्या करने वाले ज़्यादातर किसान इसी वर्ग के होते हैं। स्पष्ट है कि वाजिब मुआवज़े का न्यायसंगत, भ्रष्टाचारमुक्त वितरण भी ऐसे किसानों के संकट का बोझ हल्का नहीं कर सकता।

अब ग़रीब किसानों को लें, जिनकी स्थिति कमोबेश अर्द्धसर्वहारा की होती है। ग़रीब किसान अपनी साल भर की ज़रूरतों का बहुत कम हिस्सा ही ख़ुद की खेती से पूरा कर पाते हैं। शेष के लिए उन्हें मज़दूरी करनी पड़ती है, यानी अपनी श्रमशक्ति बेचनी पड़ती है। बर्बाद फ़सलों के मुआवज़े की रक़म से ग़रीब किसानों की स्थिति में बहुत फ़र्क़ नहीं पड़ता क्योंकि उनकी खेती होती ही बहुत कम है।

जो गाँवों और शहरों के मज़दूर हैं और शहरों की ग़रीब व आम मध्यवर्गीय आबादी है, वह सबकुछ बाज़ार से ख़रीदकर खाती है। उच्च मध्यवर्गीय आबादी भी सबकुछ ख़रीदकर खाती है लेकिन अनाज, फलों व सब्ज़ियों की क़ीमतें बढ़ने से उनकी अर्थव्यवस्था पर बहुत असर नहीं पड़ता। फ़सल ख़राब होने या बर्बाद होने की स्थिति में गाँव-शहर के मज़दूरों और शहरों के सामान्य मध्यवर्गीय और ग़रीब तबकों के उपभोक्ताओं के लिए मुआवज़ा या सहायता की बात कभी नहीं उठती, जबकि उन्हें महँगे दामों पर हर चीज़ ख़रीदनी पड़ती है और उनका जीना मुहाल हो जाता है। कृषि उत्पादों की बाज़ार में आवक की कमी से पैदा हुई स्थिति को जमाखोर और वायदा कारोबारी और बदतर बना देते हैं। जिन धनी किसानों को मुआवज़े की रक़म अधिक हासिल होती है, उन्हें आसमान छूती क़ीमतों का भी लाभ मिलता है, बिचौलिये और व्यापारी तो लाभ उठाते ही हैं।

शेष आम उपभोक्ता से धनी किसानों के हितों के टकराव को इस तरह से भी समझा जा सकता है कि फ़सल बहुत अच्छी होने पर बाज़ार में अनाज सब्ज़ी आदि की क़ीमतें कुछ कम होने से (जमाखोर-बिचौलिये-आढ़तिये क़ीमतों को फिर भी ज़्यादा कम नहीं होने देते) धनी किसानों की पेशानी पर बल पड़ जाते हैं, मुनाफ़े की गिरती दर और कुल मुनाफ़े की कमी से वे बौखला जाते हैं। वे माँग करने लगते हैं कि सरकार अधिक लाभकारी दर पर उनकी उपज का ज़्यादा से ज़्यादा हिस्सा ख़रीद ले। ज़ाहिरा तौर पर यह सरकारी ख़रीद उसी सरकारी ख़ज़ाने से होती है, जिसका अधिकतम हिस्सा बहुसंख्यक आम आबादी से निचोड़े गये परोक्ष करों से आता है।

http://jairajtg.blogspot.in/2015/04/land-acquisition-bill-make-in-india.html से साभार

जो लोग किसान आबादी के विभेदीकरण की सच्चाई को नहीं समझ पाते, वे मुआवज़े के अर्थशास्त्र के इस पूरे गड़बड़ घोटाले को नहीं समझ पाते। वे यह समझ ही नहीं पाते कि **धनी किसान के लिए मुआवज़े का मतलब केवल उसके मुनाफ़े में आयी कमी की एक हद तक भरपाई करना है, जबकि मझोले और ग़रीब किसान को जीने के लिए वास्तविक राहत की ज़रूरत होती है। ऐसे में उचित तो यह होता कि मुआवज़े की दर भी विभेदीकृत होती। यानी ज़्यादा खेती वाले धनी किसानों के मुकाबले कम खेती वाले छोटे-मझोले किसानों के लिए मुआवज़े की दर अधिक होती।**

इससे भी अहम बात यह है कि धनी किसानों के खेतों में जिन भूमिहीन खेत मज़दूरों के श्रम के बूते उत्पादन होता है, उसके लिए फ़सल ख़राब होने की स्थिति में कोई मुआवज़ा नहीं होता। शहरों के मज़दूरों, दूसरे ग़रीबों और आम मध्यवर्गीय उपभोक्ताओं के लिए भी किसी प्रकार की सहायता का कोई प्रावधान नहीं होता। सुरसा की तरह मुँह फाड़े विकराल महँगाई के सामने वे पूरी तरह से अरक्षित होते हैं। इंसाफ़ की बात तो यह होती कि धनी किसानों को मुआवज़ा देने के पहले सरकारे आम उपभोक्ताओं को सहायता देने के बारे में सोचतीं। लेकिन हम सभी जानते हैं कि ये सारी बातें परिकाल्पनिक हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में यह सम्भव ही नहीं है। आज तो सबकुछ बाज़ार की शक्तियों के हवाले है, लेकिन कुछ कीन्सियाई नुस्खे यदि लागू भी किये जायें तो उनकी सीमा बनी रहेगी। पूँजीवाद के अन्तर्गत, सरकारें उनके हितों के बारे में सोचती हैं जो उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के बूते दूसरों की श्रमशक्ति निचोड़ते हैं। शेष को बस उतना ही हासिल हो पाता है कि वे जीवित रहते हुए उत्पादन और पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को जारी रख सकें। इसी तरह, पूँजीवाद के अन्तर्गत, कभी मद्धम तो कभी तेज़ गति से, छोटे-मझोले मालिक किसानों का उजड़कर सर्वहारा की पाँतों में शामिल होते जाना उनकी नियति है।

धनी किसान कृषि क्षेत्र के पूँजीपति होते हैं और उनकी मूल समस्या यह होती है कि कृषि उत्पादन की विशेष प्रकृति के कारण उनके मुनाफ़े की दर औद्योगिक वित्तीय पूँजीपतियों के मुकाबले हमेशा कम होती है। कुल निचोड़े गये अधिशेष के, और इसलिए सत्ता के, वे हमेशा ही कनिष्ठ साझेदार होते हैं। जब भी पूँजीवाद का संकट बढ़ता है तो बड़े पार्टनर, यानी उद्योगपति और वित्तीय तन्त्र के स्वामी उसका ज़्यादा से ज़्यादा बोझ अपने छोटे पार्टनर - कृषि क्षेत्र के पूँजीपति पर डालने की कोशिश करते हैं। पूरी खेती यदि कारपोरेट खेती बन जाये, तो भी समस्या हल नहीं होती। फिर खेती का संकट पूरी व्यवस्था के लिए संकट न बन जाये, इसके लिए उन्नत पूँजीवादी देशों में भी लगातार सब्सिडी देकर कृषि-उत्पादन को जारी रखा जाता है।

इस पूरी समस्या का पूँजीवाद के पास कोई समाधान नहीं है। केवल समाजवाद ही समूची खेती का सामूहिकीकरण और राजकीयकरण करके तथा समूचे व्यापार का राजकीयकरण करके कृषि-समस्या को अन्तिम तौर पर हल कर सकता है। लेकिन यह अपने आप में अलग से विस्तृत चर्चा का विषय है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006